मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है अपने प्रिय विद्यार्थी श्री० दिनेश नारायण जी उपाध्याय "साहित्य रत्न" की इस पुस्तक को देखकर, यद्यपि पुस्तक बहुत बड़ा नहीं किन्तु संक्षेप में पुस्तक इस विषय के सब प्रमुख अङ्गोपाङ्गों पर प्रकाश डालती है और विद्यार्थियों के लिये विशेष उपयोगी है। उद्देश्य भी इसके लिखने में लेखक का यही है और लेखक ने इस पुस्तक में यथावधि अपने उद्देश्य की पूर्ण सफलता प्राप्त की है। मैं अपने मुख से अपने प्रिय विद्यार्थी की वस्तु की सराहना क्या करूँ पाठक स्वयमेव देखकर इसे सराहनीय समझेंगे इसका मुझे पूर्णाशा है! उपाध्याय जी योग्य हैं और आगे अभी साहित्य-क्षेत्र में अधिक स्तुत्य कार्य करेंगे। यही मेरी धारणा तथा मंगल कामना है। पुस्तक में कुछ प्रेस का एकाध भूलें रह गई हैं जिनका निराकरण अग्रिम संस्करण में हो जायगा। मैं प्रिय दिनेश को इसके लिये बधाई और साधुवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस पुस्तक का हिन्दी-क्षेत्र में समादर होगा।

हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
२७-३-४०

डा० रमाशङ्कर शुक्ल "रसाल"
एम० ए० डी० लिट्

समर्पण

प्रातः स्मरणीय

बाबा जी !

आपकी गोद में बिठाकर वर्णमाला का ज्ञान कराना अब भी याद है। आशा है नाटक का यह ज्ञान आपको रुचिकर होगा।

आपका

बच्चा

१ ताण्डव—यह एक उद्धता, क्लिष्टता युक्त पुष्पांचित नृत्त है, इसके आदि आविष्कर्ता तथा आचार्य शंकर जी माने जाते हैं।

२ लास्य—यह एक मधुरता, कोमलता लिए हुए किशोचित नृत्त है जो कि नाटक के आरम्भ में ही किया जाता है।

नोट :—लास्य तथा ताण्डव ये दोनों ही नृत्त नाटक के आरम्भ में ही किये जाते हैं। आचार्यों का तो यह मत है, कि इनको नाटक के आरम्भ में शोभा के हेतु किया जाता है।

द्वितीय अध्याय

रूपक का विस्तार

आचार्यों ने रूपक के दो विभाग किए हैं, प्रथम है रूपक और द्वितीय है उपरूपक।

रूपक को हम आचार्यों द्वारा १० प्रमुख विभागों के अन्तर्गत विभाजित पाते हैं। जिस प्रकार से हम रूपक को १० प्रमुख भागों में विभाजित पाते हैं। वैसे ही उपरूपक को भी हम १८ प्रमुख विभागों में विभाजित पाते हैं रूपक के १० भेदों को हम नाटक, प्रकरण भाण, प्रहसन डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, तथा ईहामृग के रूप में पाते हैं।

---

* लास्य के दस भेद किये गये हैं उन में से ये प्रमुख हैं।

१ गेयपद। २ स्थित पाठ। ३ आसीन पाठ। ४ पुष्पगण्डिका। ५ प्रच्छेदक इत्यादि।

दो शब्द

हिन्दी में नाट्य शास्त्र और नाट्यकला पर अद्यावधि कोई भी सुन्दर सर्वांग पूर्ण ग्रंथ नहीं। प्राचीन काल से ही यह विषय अछूता पड़ा हुआ है। काव्य शास्त्र तथा अलंकारादि को पद्यबद्ध करते हुए अनेक कवियो ने सुन्दर पुस्तकें लिखीं किन्तु इस विषय पर किसी ने भी लेखनी उठाने की कृपा नहीं की, सम्भवतः वह समय ही इसके उपयुक्त न था।

इसी कमी को देखकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक सुन्दर सूक्ष्म लेख इस विषय पर लिखा था। किन्तु वह केवल प्राक्कथन मात्र ही था। इसी प्रकार स्व० पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने भी एक छोटी सी पुस्तक इस विषय पर परिचायक रूप में ही लिखी।

तदुपरान्त मैंने भी एक " नाट्यनिर्णय " नामक पुस्तक इस विषय पर लिखी, जिसके पूर्व भाग में भूमिका के रूप में मैंने संक्षेप से नाट्य शास्त्र और नाट्यकला की उत्पति तथा क्रमिक अभिवृद्धि पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी-नाटको का ऐतिहासिक विकास के दिखलाने का प्रयत्न किया, उत्तर भाग में नाट्यशास्त्र के प्रमुखावश्यक नियमो को प्राचीन परिपाटी के आधार पर पद्य-बद्ध किया।

इसके पश्चात् बा० श्यामसुन्दरदास ने " रूपक रहस्य " नामक एक सुन्दर पुस्तक इस विषय पर लिखी, जो अवलोकनीय है। इधर बा० ब्रजरत्नदास ने एक पुस्तक हिन्दी नाटकों के ऐतिहासिक विकास पर लिखी है जो सुपाठ्य है।

विद्वानों का यह भी मत है कि गौ की पूँछ के अग्रभाग से तात्पर्य नाटक के अकों के विस्तार का है, अर्थात् जिस प्रकार गौ की पूँछ पहले (ऊपर) मे मोटी होती है, पर बाद को पतली होती जाती है। वैसे ही नाटक के अकों को पहले बड़ा बाद म क्रमश छोटा होना जाना चाहिये। नाटक म अर्थ प्रकृतियों तथा पाँच सधियों का प्रयोग आवश्यक है पर निर्वहण सधि अत्य त अद्भुत होनी चाहिये।

२ रूपक का द्वितीय भेद प्रकरण है—इसके कथानक के विषयो म पतिहासिकता की आवश्यकता नहीं है। इसका कथानक कवि कल्पित तथा लौकिक हो सकता है। इसका नायक धीर शा त होना चाहिये धर्म, अर्थ, काम इन त्रय महान आदेशों मे उसका प्रत्यक कार्य प्रेरित होना चाहिये। नायिका के इसके अ तर्गत तीन रूप माने गये हैं—प्रथम शुद्ध जिसके अ तगत नायिका कुलकन्या हो द्वितीय विकृत जिसकी नायिका वश्या हो तृतीय सकीर्ण जिसमें दोनों हो अर्थात् शुद्ध और विकृत दोनों। इ हीं के ऊपर शुद्ध विकृत सकीर्ण ये तीन भेद किये गये हैं। सस्कृत म मालतीमाधव, पुष्पदूतिका, मृच्छकटिक क्रमश उपरोक्त के उदाहरण हैं।

३ भाण—इस का भी कथानक कवि कल्पित ही होता है। एक पात्र तथा एक ही अक का यह होता है। इसका नायक एक धूर्त व्यक्ति होता है और अपने धूर्तता पूर्ण बातों से वह दूसरों के कृत्यों पर प्रकाश डालता है। इसका नायक स्वय ही आकाश की ओर देख कर इस प्रकार की बातें करता मानों वह दूसरे किसी से बात करता है और उसे उत्तर दे रहा है।

विषय-सूची

७ समवकार—इसका कथानक देवता असुरों से सम्बन्ध रखता है ऐतिहासिकता भी इसके लिये आवश्यक है। इसमें कुल १२ नायक होते हैं, और प्रत्येक का फल अलग अलग होता है। वीर रस ही की प्रधानता इसमें होती है। विमर्श सन्धियों को छोड़ कर इसमें चारों सन्धियाँ उसमें रहती हैं। यह तीन अंकों में विभाजित किया गया है। प्रथम अंक में दो सन्धियाँ तथा छः घड़ी का वृतान्त दूसरे में दो घड़ी का वृतान्त तथा एक सन्धि और तीसरे में १ घड़ी का वृतान्त तथा एक सन्धि होता है।

८ वीथी—इसका नायक कोई भी उत्तम मध्यम व्यक्ति हो सकता है, इसमें दो ही पात्र होते हैं—भाण के समान आकाश भाषित की ओर इसमें भी अत्यधिक झुकाव होता है। इसमें श्रृंगार रस मिलता है।

९ अंक या उत्सृष्टकांक—इसका नायक कोई भी साधारण व्यक्ति हो सकता है। कथानक के बारे में लेखक अपनी इच्छा नुसार प्रख्यात कथा में कुछ परिवर्तन कर सकता है। इसमें करुण रस की प्रधानता होती है। जय पराजय का वर्णन इसमें होता है। इसके अन्तर्गत वैराग्य उत्पन्न करने की भाषा होती है।

१० ईहामृग—इसमें नायक अप्राप्य सौंदर्यवती नायिका पर मरता रहता है। नारी के अपहरण के इच्छा के कारण युद्ध की आशंका होती है पर वह नहीं होती है। इसका प्रतिनायक धीरोदात्त मनुष्य या देवता होता है। कथानक के विषय में कवि को परिवर्तन की आज्ञा आचार्यों ने दी है।

आमुख

इस छोटी सी पुस्तक में मैंने अपने कुछ अनुभवों का समावेश किया है। नाट्यशास्त्र एक गंभीर विषय है। इसपर इस आकार की कई पुस्तकें लिखी जा सकती है। पर इसके अन्तर्गत मैंने मुख्य मुख्य नाट्यशास्त्र के अंगो पर प्रकाश डाला है। व्यर्थ के उन अंगो की जिनकी कुछ भी आवश्यकता उच्च कक्षा तक के विद्यार्थियो को नहीं पड़ती, उनका इसमें समावेश नहीं किया गया है।

इस प्रकार मैंने इसमे नाट्यशास्त्र के प्रमुख अंगों का, संस्कृत के उन नाट्यकारों की शैली और कला का जिनके ग्रन्थो का हिन्दी में अनुवाद हुआ है तथा हिन्दी साहित्य के नाट्यकारों की मनोवैज्ञानिक आलोचनात्मक विवेचना की है। आशा है इससे हिन्दी साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी लाभ उठावेगा।

पूज्य डा० रसाल जी का 'दो शब्द' के लिए मैं परम आभारी हूँ।

शीतलसदन
मसकनवां
गोन्डा

होली—१९४०

श्री दिनेश नारायण उपाध्याय

३ गोष्ठी—यह लगभग १० मनुष्यों तथा ५ स्त्रियों के कार्य कलापों का एक काव्य होता है। कौशिकी वृत्ति का प्रयोग इसमें होता है।

४ सट्टक—यह प्राकृत में लिखा जाता है, संस्कृत में इसके कम उदाहरण मिलते हैं यह अद्भुत रस का काव्य होता है और इसमें प्रवेशक तथा विष्कम्भक नहीं होते हैं इसके अंकों को जवनिका कहते हैं। कर्पूरमञ्जरी इसका एक सत् उदाहरण है।

५ नाट्यरासक—यह हास्यरस प्रधान काव्य होता है, पर शृंगार रस का भी इसमें कहीं कहीं प्रयोग होता है, नायक, उदात्त उपनायक पीठमर्द नायिका वासकसज्जा होती है।

६ प्रस्थानक—इसमें दो अंक होते हैं इसके अन्तर्गत १० नायक होते हैं। उपनायक दास भी होने पुरुष हो सकता है, नायिका भी दासी हो सकती है। इसमें कौशिकी और भारती वृत्तियों का प्रयोग होता है।

७ उल्लाप्य—इसका नायक धीरोदात्त व्यक्ति होता है, शृंगार हास्य करुण रस का इसमें परिपाक होता है। इसमें चार नायिकायें होती हैं। दिव्य कथानक के अन्तर्गत एक अंक में ही यह सीमित रहता है। इसमें कुछ लोगों का मत है कि तीन अंक होते हैं पर एक ही अंक का होना सर्वमान्य है।

८ काव्य—यह हास्य रस से युक्त एक अंक का होना है इसका नायक उदात्त होता है। इसमें एक नायिका भी होती है। प्रतिमुख तथा निर्वहण संधियाँ इसमें पाई जाती हैं।

९ रासक—इसकी नायिका एक प्रसिद्ध स्त्री होती है प्रतिनायक एक मूर्ख व्यक्ति होता है। उदात्त भावों का बराबर

प्रथम अध्याय

अनुकरण की प्रधानता

आचार्यों का यह मत कि नाटक में अनुकरण अपना एक विशेष स्थान रखता है, बालक जिस समय पृथ्वी पर आता है, उस समय वह संसार के कार्य-कलापों से पूर्ण अनभिज्ञ रहता है; पर बढ़ने पर वह धीरे धीरे अपने आप अनुकरण करना प्रारम्भ कर देता है। भारतीय बालक का अपनी मातृ भाषा में बिना बताये बोलना उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि एक जर्मन बालक का जर्मन भाषा में बोलना। अनुकरण का ही एक उच्च तथा कलापूर्ण रूप नाट्य शास्त्र में अभिनय के नाम से व्यवहृत है। नाटकों में अनुकरण की प्रधानता न केवल भारतीय नाट्य शास्त्र के आचार्यों ने मानी है, पर पश्चिमीय विद्वान भी अनुकरण से ही नाटकों की उत्पत्ति मानते हैं।

निकल महोदय अपने थियरी आफ् ड्रामा पुस्तक में (Theory of Drama by Nicoll) नाटक की एक सुन्दर परिभाषा दी है।

सिसेरो (Cicero) के अलियस डानेटस (Aelius Donatus) के कथनानुसार यह है, कि (Drama is a copy of life, a mirror of custom, a reflection of truth) नाटक जीवन का एक प्रतिलिपि, व्यवहारों का एक दर्पण, और

१५ दुर्मल्लिका—यह चार अकों का होता है, कौशकी, भारती वृत्तियाँ तथा गर्भ सन्धि इसमें नहीं होतीं। इसके सब पुरुष पात्र चतुर होते हैं और नायक एक हीन पुरुष होता है।

आचार्यों ने इसके अकों का विस्तार इस प्रकार दिया है

पहला अक विस्तार ' घड़ी का क्रीडा विटकी
दूसरा " " १० " " विदूषक विलास
तीसरा अक " १२ " " पीठ मर्द का व्यापार होता है।
चौथा " " २० " " नागरिक पुरुषों की क्रीडा होती है।

१६ प्रकरणिका—इसका नायक एक व्यापारी पुरुष होता है, नायिका एक सजातीया स्त्री होती है।

१७ हल्लीश—इसमें एक उदात्त वचन बोलने वाला पुरुष तथा ७, ८, १० स्त्रियाँ होती हैं। कौशिकी वृत्ति और मुख और निर्वहण सन्धियाँ होती हैं।

१८ भाणिका—इसमें एक अक होता है, इसका नायक मंद मति का और नायिका प्रगल्भा होती है। भारती मुख निर्वहण सन्धियाँ इसमें होती हैं। वृत्तियों में केवल कौशिकी वृत्ति होती है।

से पात्रों के कलापूर्ण अभिनय को देखता है, और उनका सुखानुभव करता है। जितना ही नाटकों मे देखने के कार्य की प्रधानता है, उतना ही सुनने की भी, और इसलिये यह कहना असंगत न होगा कि नाटक में श्रवणेन्द्रिय तथा चक्षुरेन्द्रिय दोनो का एक घनिष्ठ सम्बन्ध है, पर चक्षुरेन्द्रिय की प्रधानता श्रवणेन्द्रिय से अधिक अवश्य है। चक्षुरेन्द्रिय का विषय रूप को ग्रहण करना है, और दृश्यकाव्य अथवा नाटक में इस इन्द्रिय की अधिक प्रधानता होने से आचार्यों ने इसको रूपक की संज्ञा दी है।

आचार्यों ने इस रूपक को दो प्रमुख उपकरणों के अन्तर्गत विभाजित किया है।
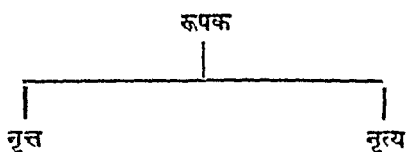
१ नृत्त—अभिनय रहित नाच, को कहते हैं, जिसमें भावों के प्रदर्शन के लिये अनुकरण नहीं किया जाता है।

२ नृत्य—साधारणतया आधुनिक समय में भावों को प्रदर्शन करने वाला होता है Dance शब्द इसी का सूचक है, इसमें दूसरों का अनुकरण किया जाता है।

नृत के भी आचार्यों ने दो भेद किये हैं।
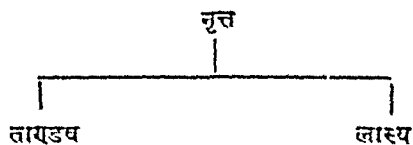
तृतीय अध्याय

वस्तु की व्याख्या

किसी भी दृश्य काव्य के कथा अर्थात् Story को नाटकीय आचार्यों ने वस्तु की संज्ञा दी है। इस वस्तु के आगे चलकर दो भेद किये गये हैं। अधिकारिक तथा प्रासगिक।
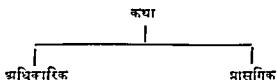
रामायण की कथा में रामचन्द्र की कथा तो अधिकारिक या प्रमुख कथा है, और सुग्रीव की कथा उनके प्रासगिक कथाओं में से एक है। इस प्रकार से कथा दो प्रमुख विभागों में विभाजित हो गई हैं अधिकारिक तथा प्रासगिक।

प्रासगिक वस्तु के भी आगे चल कर दो भेद होते हैं जिन्हें पताका तथा प्रकरी कहते हैं। उस प्रासगिक कथा वस्तु को जो बराबर चलती रहती है पताका की संज्ञा दी गई है, पर प्रकरी उस प्रासगिक कथा वस्तु को कहते हैं जो कथा वस्तु कुछ काल तक चलकर रुक जाय।

एक और विचारणीय संज्ञा यहाँ पर पताका स्थानक है इसमें पात्र के दृढ़ पूर्वक स्थिर विचार के विरुद्ध कार्य हो जाने की क्रिया होती है। सीधे शब्दों में पात्र करना कुछ चाहें और कुछ दूसरा हो जाय। साहित्य दर्पणानुसार इसके ४ भेद हैं।

१ नाटक शब्द का प्रयोग आधुनिक समय में दो भिन्न रूप में मिलता है। प्रथमेव हम नाटक को रूपक के एक भेद के रूप में पाते है, और द्वितीय स्थान में हम नाटक शब्द को रूपक का द्योतक ही समझते हैं। आधुनिक समय में नाट्य शब्द रूपक का स्थानापन्न हो गया है।

नाटक के ऊपर और कुछ विचार करने के पूर्व इसके कथानक पर ध्यान देना उचित समझ पड़ता है। संस्कृत के नाट्याचार्यों ने नाटक के कथानक को एक सकुचित स्थल दे रखा है, और वही संस्कृत परम्परा हमें हिन्दी नाटको में भी कुछ मिलती है। आज कल हिन्दी नाटको की रचना एक दूसरे रूप में हुई है, संस्कृत के आचार्यों के अनुसार नाटक की कथा एक इतिहास प्रसिद्ध कथा होनी चाहिये पर अब हमे ऐसे नाटक मिलते हैं जिनमें इस पर कम ध्यान दिया ज्ञात पड़ता हैं।

नाटक के पात्रो में नायक, नायिका, दूती, इत्यादि होते हैं। जिसमें नायक पुरुष पात्रो मे प्रधान होता है और नायिका स्त्रियो में। इन मे शास्त्रोचित गुणो का होना आवश्यक है। नाटक के प्रधान उद्देश्य के प्राप्त करने के लिये चार पांच आदमियों को हाथ बटाना चाहिए। नाटककार को नाटक के रचना में नाटक के प्रमुख रस के विरोधी वृतान्तो का वर्णन उसी नाटक में कदापि न करना चाहिये।

नाटक के अन्तर्गत ५ अंकों से लेकर १० अंकों तक का समावेश हो सकता है। प्रत्येक अंक का विस्तार कितना होना चाहिये इसके विषय में आचार्यो का मत है कि नाटक की रचना गौ के पूँछ के अग्रभाग के समान होना चाहिये। पर कुछ
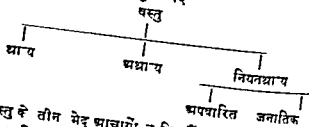
वस्तु के तीन भेद आचार्यों ने किए हैं प्रथम है श्राव्य जिसे प्रत्येक व्यक्ति सुन सकता है, दूसरा अश्राव्य है जिसे कोई भी नहीं सुन सकता है और तीसरा है नियतश्राव्य जिसे कुछ नियत लोग सुन सकें।

नियतश्राव्य के दो भेद हुए। एक अपवारित जिसमें सामने मौजूद पात्र के ओर मुँह करके उसके द्वारा कही रहस्य की बातों पर कटाक्ष किया जाता है। दूसरा जनातिक है। इसमें दो से अधिक मनुष्यों के बातचीत अनामिका और अंगुष्ठ अंगुलियों को छोड़ कर और बाकी तीनों अंगुलियों की आड़ में गुप्त रूप से होती है।

आकाशभाषित—आकाश की ओर मुँह करके जो बात की जाती है उसे आकाश भाषित कहते हैं।

चतुर्थ अध्याय

पात्रों का विवेचन
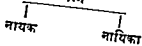
४ प्रहसन—यह एक हास्यरस प्रधान छोटा सा काव्य होता है जिसमें तीन, चार पात्र रहते हैं। वीथी के १३ अंगो का समावेश इसमें हो सकता है। अरभटी वृत्ति, विष्कंभक का प्रयोग इस में नहीं होता इनके तीन शुद्ध विकृत संकर भेद किये गये हैं।

शुद्ध—संन्यासी, पापडी, पुरोहित, लोग नायक का स्थान लेते हैं, चेट, चेटी, विट का भी प्रयोग होता है और हास्यरस प्रधान ही रहता है।

विकृत—मे नपुंसक, तपस्वी लोग, कामुकों के रूप में दिखाई पड़ते हैं, और कोई विशेषता नहीं।

संकीर्ण—एक धूर्त पुरूष के नाटकत्व में हास्य का बड़ा ही बाहुल्य रहता है। झूठी प्रशंसा, छल, हसी उड़ाने की इच्छा इत्यादि वीथ्यांगो का व्यवहार होता है।

५ डिम—इसका कथानक पौराणिक अथवा ऐतिहासिक होता है कवि का कल्पित नहीं, माया, क्रोध, इन्द्रजाल, संग्राम, सूर्य ग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि बातों से ही बना होता है। इसमें १६ उद्धत नायक होते हैं जैसे, भूत, प्रेत, पिशाच यक्ष, गंधर्व इत्यादि श्रृंगार, हास्यरसो का प्रवेश इस में नहीं होता और इसमें ४ अंक तथा ४ संधियाँ होती हैं।

६ व्यायोग—इसका कथानक एक इतिहास प्रसिद्ध या पौराणिक होता है इसमें स्त्री पात्र होती ही नहीं, और नायक एक धीरोद्धत्त राजर्षि या दिव्य पुरूष होता है। हास्य तथा श्रृंगार रस इसमें नहीं होता है।

नायकों का आचार्यों ने उनके अवस्था के अनुसार भेद करके रहने दिया है, पर कुछ आचार्यों ने अवस्था तथा कार्य के अनुसार भी उदात्त, उद्धत आदि भेद किये हैं। धीरता का गुण सब मनुष्यों के लिये आवश्यक है। अतएव नायकों के लिये भी इसका प्रयोग होता है। यहाँ पर मैंने सब प्रथम इस सर्वमान्य विभाजन का ही अनुकरण किया है।

१ धीर शान्त—वह नायक होता है जो पूर्व कथित नायक के सर्व गुणों से युक्त होता हुआ द्विजाति हो। आशय यह कि द्विजाति नायक जो नायक के गुणों से युक्त हो धीर शान्त होता है।

२ धीर ललित—वह नायक राज पुरुष हो होता है, वह राजा जो अपने कार्यों को दूसरे कार्य कर्त्ताओं पर सौंप कर प्रेमालाप में मस्त रहे धीर ललित होता है।

३ धीरोदात्त—वह नायक है जो अपने चित्त वृत्तियों को बदल न सके अर्थात् शोक, मृत्यु इत्यादि आपत्तिजनक कार्यों में जो कार्य भ्रष्ट न हो। तथा क्षमा, गम्भीरता, दृढ़ता, इसमें प्रधान रूप से हो धीरोदात्त होता है। जैसे रामचन्द्र का राज्याभिषेक के समय वनगमन सुन कर चित्त खिन्न न करना इस विशेषता का उदाहरण है।

४ धीरोद्धत नायक—वह नायक है जो कपटी, अहङ्कारी, शूर, आत्म प्रशंसा करने वाला, कपटी, मायावी, तांत्रिक पुरुष हो।

आगे चलकर नायकों के क्रिया के अनुसार अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ट ये चार भेद और किए गए हैं।

उपरूपक

उपरूपक के १८ भेद धनञ्जय इत्यादि आचार्यों ने किये हैं। इसका वर्गीकरण इस प्रकार है, नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्यरासक, प्रेखण, सनलापक श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुमल्लिका, प्रकीर्णिका, हल्लीश, भाणिका।

१ नाटिका—आचार्यों ने नाटिका के कथानक को कवि कल्पित बताया है। अंको के विषय में आचार्यों का मत है, कि नाटिका के अन्तर्गत चार अंक होने चाहिये। नायक कोई धीर ललित राजा ही होता है, पर अपने प्रेम पात्री के ऊपर महारानी के भय से अपने प्रेम को स्पष्ट नहीं होने देता, यद्यपि उसकी प्रेमिका राजवंशीय नायिका होती है। नाटिका के अन्तर्गत अधिक पात्र स्त्रियाँ ही हुआ करती हैं। नायिका के बारे में लोगो का मत है कि उसका सम्बन्ध या तो रनिवास से होता है या वह राजवंशीय कोई अनुरागवती, गायन प्रवीण कन्या होती है, महारानी एक मानवती राजवंशीय प्रगल्भा नायिका होती है। नवीन नायक नायिका से प्रेम कराने का कार्य इसी के आधीन होता है। नाटिका में कौशिकी वृत्ति के चारों अंशो का चारों अंकों में पालन होता है। विमर्श सन्धियाँ बहुत कम नहीं के बराबर होती हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की चन्द्रावली नाटिका एक हिन्दी साहित्य की एक उत्कृष्ट नाटिका है।

२ त्रोटक—यह श्रंगार रस से युक्त पाँच से नौ अंकों तक का होता है। इसके पात्र देवता तथा मनुष्य होते हैं। विदूषक के कार्यों का प्रत्येक अंकों में होना अनिवार्य सा कहा गया है।

दुरै न निघर घटया दियो, ये रावरी कुचाल।
विष सी लागत है हिये, हँसी लिसी की लाल॥

४ दृढ़ पूर्वक अपराध गोपन करने में चतुर पति को शठ नायक कहते हैं। सूठ बोल कर झूठी बातों पर विश्वास दिलाना ही इसका कार्य होता है।

नाट्यशास्त्र के प्रमुख आचार्य भरत मुनि ने ज्येष्ठ, मध्यम, अधम तीन और भेद माने हैं। पर यह ज्येष्ठा मध्यमा कनिष्ठा जो तीन नायिकाओं का वैसिक विभाग है, उसी की छाया से यह प्रभावित मालूम होता है। पर भरत मुनि के प्रत्येक नायक के दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य जो तीन विभाग किये गये हैं व बड़े ही उपयोगी तथा अच्छे हैं। दिव्य देवताओं के लिए अदिव्य मनुष्यों के लिए, दिव्यादिव्य मनुष्य शरीर में देवता धर्म के धीर नायकों के लिये प्रयुक्त होता है। हमने यहाँ पर धार्मिक विभाजन को स्थान नहीं दिया है कारण यह है कि उपरोक्त दो विभाग पर्याप्त है।

नायकों में स्वाभाविक कौन कौन से गुण होने चाहिये इसके ऊपर भी आचार्यों ने विचार किया है, आचार्यों के मतानुसार ये ८ प्रकार के होते हैं।

सात्विक

१	२	३	४	५	६	७	८
शोभा,	विलास,	माधुर्य,	गाम्भीर्य	स्थिरता,	तेज,	ललित्य तथा	औदार्य

ये आठ स्वाभाविक नायकों के गुण हैं।

प्रदर्शन इसमें होता है। इसके अन्तर्गत ५ पात्रो का एक ही अंक में संनिवेश होता है। निर्वहण सन्धियों का कौशिकी और भारती वृत्तियों के साथ इसमें प्रयोग होता है। सूत्रधार इसमें नहीं होता है।

१० प्रखेण—सूत्रधार, विषकम्भक तथा प्रवेशक का प्रयोग इसमे नहीं होता। नान्दी प्रारोचना नेपथ्य से पढ़ी जाती हैं। इसका नायक एक हीन पुरुष होता है। एक ही अंक के अन्तर्गत यह काव्य होता है इसमें गर्भ तथा विमर्श सन्धियों का प्रयोग नहीं होता।

११ संल्लापक—यह ३, ४ अंकों में संग्राम इत्यादि के वर्णनों से युक्त होता है, इसका नायक एक पाखंडी होता है। भारती कौशिकी वृत्तियां तथा शृंगार और करुण रस इसमें नहीं होता।

१२ श्रीगदित—यह भी एक अंक का प्रसिद्ध कथानक से युक्त काव्य होता है। इसका नायक एक धीरोदात्त पुरुष होता है। इसके अन्तर्गत भारतीय वृत्ति की अधिकता होती है। गर्भ तथा विमर्श संधियां इसमें नहीं होतीं।

१३ शिल्पक—यह चारों अंकों का एक ब्राह्मण नायक तथा एक हीन उपनायक से युक्त काव्य है। शान्त और हास्यरस को छोड़ कर इसमें सब रस होते हैं, इसके अन्तर्गत चारों वृत्तियां भी होती हैं।

१४ विलासिका—यह एक अंक का थोड़े से वृतान्त का होता है। इसका नायक एक हीन पुरुष अपनी वेष भूषा से सजा हुआ होता है।

चाहिए। इसे अपने नायक का अनुचारी कार्यपटु, तथा भक्त होना चाहिए।

व्यवसाय सहायक

पीठ मर्द के अतिरिक्त नायक के व्यवसाय सहायक लोग भी होते हैं जिसका विवरण इस प्रकार है शृंगार सहायक, अर्थ चिन्ता सहायक, दण्ड सहायक, धर्म सहायक, अंत पुर सहायक तथा दूत।

(क) शृंगार सहायक

१ विट—यह स्वामी का सेवक होता है। यह अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिए वाद्य, संगीत नृत्त आदि में पारगत होता है। वाचालता के गुण से युक्त यह वेश्यावचार में कुशल पुरुष होता है।

२ चेट—यह नौकर तथा दास के लिये प्रयुक्त होता है।

३ विदूषक—यह नायक का मुँह लगा, हास्यास्पद, धूर्तता में पांडित्यपूर्ण सांसारिक पुरुष होता है। इसके वेश, विन्यास बोलचाल उठक, बैठक, तथा वस्त्रादि से हँसी दिल्लगी निकलती रहती है। नाटक में हँसी करवाने का इसका प्रधान कार्य है।

४ माली—जो पुष्प आदि के उपचारों में पंडित होता है।

५ तबोली—यह पान इत्यादि देने में नायक का कार्य करता है।

६ गंधी—यह इत्र इत्यादि का प्रबंधक होता है।

रूपक

रूपक	उपरूपक
१ नाटक	१ नाटिका
२ प्रकरण	२ त्रोटक
३ भाण	३ गोष्ठी
४ प्रहसन	४ सट्टक
५ डिम	५ नाट्यरासक
६ व्यायोग	६ प्रस्थानक
७ समवकार	७ उल्लाप्य
८ वीथी	८ काव्य
९ अंक	९ रासक
१० ईहामृग	१० प्रेखण
	११ संलापक
	१२ श्रीगदित
	१३ शिल्पक
	१४ विलासिका
	१५ दुर्मल्लिका
	१६ प्रकरणिका
	१७ हल्लीश
	१८ भाणिका

माधवी मंडप के महकै मधु यों मधुपान समान करैरी।
रातो जवान वितानन तानि मनोजहुँ सानि रह्यो मरसैरी॥
धीर रसाल की डारिन बैठि पुकारत कोकिल डौंडिन दै गो।
मूजिहू कन्त सो दानवि मानसुजानची धीरवसन्त की बैरी॥

(ग) अधमा—अधम रूप से दुराव करने वाला कटुभाषिणी स्त्री। यथा।

कोकहि बाज गोपालहिं! बाघहिं तो दुगपाल अमान लगरी।
ताहित प्यारी! मय यदनाम धाराम विसारि दिये घर केरी॥
'ठाकुर' तू न डरू पियजी इतने पर लालन बार घनेरी।
प्रीतम की सुमइ गति या छतिया कसकान कसाइन तेरी॥

२ धर्मानुसार नायिकाओं का विभाजन इस प्रकार से है।

(क) स्वकीया—उस स्त्री को कहते हैं जो केवल अपने ही पति में अनुराग करे। इसके दो ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा भेद हैं।

१ ज्येष्ठा—अनेक विवाहित स्त्रियों में एक विवाहिता जो नायक का प्रिय हो।

२ कनिष्ठा—अनेक विवाहित स्त्रियों में एक ज्येष्ठा को छोड़ कर शेष सब स्त्रियों को कनिष्ठा कहते हैं।

नोट—स्वकीया—यह शील युक्त सच्चरित्रा, पतिव्रता, लज्जावती, स्त्री होती है। इसके भी अवस्था के अनुसार तीन प्रमुख भेद-मुग्धा, मध्या, तथा प्रौढ़ा होते हैं।

१ मुग्धा—काम चेष्टा रहित अंकुरित यौवना को मुग्धा कहते हैं। यथा—

प्रथम यह है जिसमें प्रेम युक्त उपचारो से कोई बड़ी इष्ट सिद्धि हो जाय जैसे रत्नावली नाटिका में सागरिका वासवदत्ता का रुप धारण कर मिलने के स्थान पर गई पर उस स्थान पर भेद के खुल जाने के कारण स्वय फाँसी लगा कर लटकने लगी। राजा सागरिका को वासवदत्ता समझ छुड़ाने लगा और बाद में सागरिका कि बोली से उसे पहचान पाया, यहाँ राजा बचाने वाला था वासवदत्ता को घर बनाया सागरिका को।

द्वितीय पताका स्थानक उसे कहते हैं जहाँ अनेक चतुर वचनों से गुँथे हुये श्लेष युक्त वाक्य हों और साधारणतया जहाँ श्लेषालकार भी हो।

तृतीय मे दूसरों द्वारा प्राप्त उत्तर श्लेष युक्त होता है इस के वचन किसी विशेष निश्चय से युक्त होते हैं। चतुर्थ में श्लेष युक्त अथवा द्व्यार्थक वचनों का प्रयोग होता है, और इसमें प्रधान फल की सूचना होती है। जैसे रत्नावली में राजा की कथा।

अर्थ प्रकृतियाँ

कथा के वस्तु को एक चमत्कृत रूप देकर कथा वस्तु के प्रधान ध्येय को प्राप्त करने में सहायता देने वाला चमत्कार युक्त जो अंश होते हैं, उन्हे अर्थ प्रकृति कहते हैं। इनके आचार्यों ने ५ भेद माने हैं।

अर्थ प्रकृतियाँ

१	२	३	४	५
बीज	बिन्दु	पताका	प्रकरी	कार्य

१ बीज—यह कथा क्रमशः बढ़ता जाने वाला भाग है।

मेरा पग भांवतो हो भावती सलोना हौं,
हँसत कही वालम बिताइ कित रतियाँ।
इतना सुनत हँसि जात भयो,
पीछे पछिताई हौं मिलन चली बात मेरा बतियाँ।
'दास' बिन भेंट हौं दुखित भई आप मेरा,
सजनी बनाय बूझी आपन की बतियाँ।
चार लागी लगी मग जोहौं हौं भिनसार लागी,
हाय अब उनकी सदेसऊ न पतियाँ।

४ विप्रलब्धा—सकेत करने पर प्रिय के अप्राप्ति क दुख मे खिन्न स्त्री। यथा—

भादौं की राति अँधियारी घेर घन घरा,
बरसे मुसलधार भादं भरे मन म।
एसी समय भाजत कुँवर कान्ह जू के जी है,
कुँवरि नवजा गइ पागी प्रेमपन म॥
जौन थल मिलन बताया तहाँ पाया नाहि,
"रघुनाथ' मदन सताया ताहि छन म।
जैइ बूँदें नीर की सुखद लागे थीर तेइ
बूँदें तीर सा लिया के लागि तन म॥

५ उत्कंठिता—संकेत में प्रिय के अप्राप्ति कारण का चितक करने वाली स्त्री को उत्कंठिता कहते हैं। यथा—

'देव' पुरैनि के पात निचान तें, हैं हैजुग चब मचान गहेरी।
चीते के चगुल में परिकै, कर सयाल घायल ह्वै गिरहेरी।
मौने कै मञ्जु दली कदली, जरि कै हरि कुंजर लुञ लहेरी॥
हेरी सिकार रहे री कहूँ, मृगराज अहेरी है आज अहेरी।

२ प्रयत्न—उस अवस्था को कहते हैं जब कार्य के साधन के लिये उपाय किया जाता है।

३ प्राप्त्याशा—जिसे हम दूसरे शब्दों में कार्य सफलता की सम्भावना भी कहते हैं।

४ नियताप्ति—उस अवस्था को कहते हैं जिसमें कार्य की सफलता निश्चित हो जाती है।

५ फलागम—जिसमे उद्देश भी कार्य सफलता के साथ साथ सिद्ध हो जाता है।

संधियाँ

किसी भी कथा के आरम्भ, प्रयत्न इत्यादि पाँचों अवस्थाओं तथा अर्थप्रकृतियों (कथा के प्रधान फल प्राप्ति के लिये अग्रसर करने वाले अंश) के मिलने से पाँच प्रमुख अंश हो जाते हैं जैसे बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी इत्यादि। संधि को हम पारिभाषिक रूप में इस तरह कह सकते हैं। (एक ही प्रमुख प्रयोजन के साधक उन कथाओं का मध्यवर्ती किसी एक प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होने का संधि कहते हैं) ये पाँच प्रकार की होती हैं।
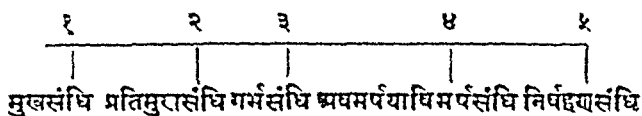
वाली तथा स्वयं संगम के इच्छा से संगमस्थल पर रात्रि में काले वस्त्रादि धारण करके जाने वाली स्त्री को कृष्णाभिसारिका कहते हैं।

२ शुक्लाभिसारिका—श्वेत वस्त्रादि धारण करके संयोग स्थल पर जाने वाली तथा उसे बुलाने वाली परकीया स्त्री को शुक्लभिसारिका कहते हैं। यथा—

जुवति जोन्ह में मिलगई, नेक न ठिक ठहराय।
सौंधें की डोरी लगी, चले अली संग जाय॥

३ दिवाभिसारिका

प्रिय संगमार्थ दिन को जाने वाली स्त्री। यथा—

चक्कर मडल प्रचड नभमडल तै,
घुमडी परत अली अलिगन लहरी।
केहरि कुरग इक संग पर वैर तजि,
कोहिल कलित पर सोहैं तरु छहरी॥
उरधउ सामन तें सूल्न अधर परा ।
हरि हरि हतियाँ हमारी जाति हहरी।
गाढ़ो प्रीति कौन की हिए म आइ,
जाइ ठाढ़ो सिर जति परी है जेठ की दुपहरी।

९ प्रवत्स्यत्पतिका—प्रिय के विदेश चल जाने से व्याकुल स्त्री को प्रवत्स्यत्पतिका कहते हैं। यथा—

करो देह जो चाकना हरि, नित लाइ सनेह।
विरह अगिनि जरि छिनक में हान चहत अब देह॥

५ निर्वहणसंधि—इसके अन्तर्गत चारों उपरोक्त संधियों का अपने अपने स्थान पर कार्य सिद्धि के लिये उपयोग हो जाता है और मुख्य फल की सिद्धि भी हो जाती है। इसमें फलागम अवस्था भी होती है।

निम्नोक्त ६ कारणों से इन संधियों का प्रयोग होता है।

१—रचना को इच्छानुसार पूर्ण करने के हेतु।

२—गुप्त बात को संनिहित रखने के हेतु।

३—कार्य के प्रकाशित करने में।

४—भावों को संचारित करने में।

५—कोई आश्चर्ययुक्त बात लाने में।

६—कथा को रुचिकर बनाने के हेतु विस्तार करने में।

कथावस्तु

नाटकीय वस्तु को आचार्यों ने दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है, प्रथम है सूच्य तथा द्वितीय है दृश्य। सूच्य से तात्पर्य उस वस्तु से है जिसकी नाटक में सूचना दे दी जाती है जैसे मरना, यात्रा, देश विप्लव इत्यादि पर दृश्य वह वस्तु है। जिसका नाटक में पूर्ण प्रदर्शन होता है।

भारतीय नाट्य शास्त्रकारों ने नाटकों को केवल सुखांत ही रखने का दृढ़ निश्चय सा कर लिया था, उन लोगों के अनुसार दुखान्त नाटकों का खेलना जनता के ऊपर एक बुरा प्रभाव करने वाला होता था। परन्तु संसार के और देशो में सुखान्त दुखान्त दोनों ही प्रकार के नाटक लिखे गये हैं।

कि रस नाटक के पर्याप्त विषय में एक प्रधान वस्तु है, रस का पूर्ण परिपाक जिस नाटक म नहीं होता वह वास्तव में पूर्ण नाटक नहीं है।

रस

संस्कृत के आचार्यों का मत है कि जब अत्यधिक स्थाइभाव, विभाव, अनुभाव और सचारियों के साथ मनुष्य के हृदय में चमत्कृत होकर अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न करता है तब उससे रस कहते हैं।

या

रस उस लोकोत्तर आनन्द का नाम है जो काव्य अभिनय व्यापार द्वारा उद्बुद्ध और अन्य सहायक भावों द्वारा अभिव्यक्त होता है, इसके अग स्थाइ, सचारी, अनुभाव हाव और विभाव हैं।

रस के अग
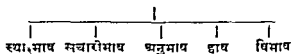
स्थाइभाव	सचारीभाव	अनुभाव	हाव	विभाव

स्थाईभाव

जिसकी रस में सदा स्थिति रहती है। उसे स्थाइ कहते हैं। इसके नव भेद हैं। अर्थात् रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य तथा निर्वेद।

१ विपकंभक—इसके अन्तर्गत मध्यम पात्रों द्वारा पहले हुई कथा के आगे होने वाले भाग का वर्णन होता है। यह विपकंभक २ प्रकार का होता है।

(अ) शुद्ध--जिसमें एक या अनेक मध्य पात्र इसका प्रयोग करें—पात्रों की भाषा संस्कृत ही होती है।

(ब) शंकर—जिसमें मध्य अथवा नीच पात्र द्वारा इसका प्रयोग होता है। भाषा इसमें प्राकृत होती है।

२ प्रवेशक—इसके अन्तर्गत बीती बातों का तथा आगे होने वाली बातों का वर्णन होता है। छूटी हुई बातों का भी इसमें वर्णन होता है। इसका प्रयोग दो अंकों के बीच में किया जाता है।

३ चूलिका—पर्दे से किसी गुप्त बात की सूचना को, चूलिका कहते हैं।

४ आकाश्य—इसमें कथा एक अंक से दूसरे अंक में बराबर चलती रहती है। पूर्व अंक के पात्र अगले अंक में पुनः आकर उसी कार्य के श्रृङ्खला को अग्रसर कहते हैं।

तथा रंगशालाओं और उनके दर्शकों का भी गहरा विवेचन किया है।

नाट्यकारों के विषय में वर्णन करते समय ४ प्रकार के नाट्यकारों का हम शास्त्रों में पाते हैं।

नाट्यकार

उदात्त	उद्धत	प्रौढ	विनीत
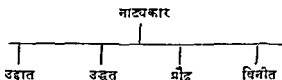
१ उदात्त नाट्यकार वह है जो अपने मन में अभिमान से युक्त युक्तियों को रखता है।

२ उद्धत नाट्यकार दूसरों द्वारा अपवादित होने पर अपनी प्रशंसा करता है।

३ प्रौढ नाट्यकार अपनी प्रशंसा को कड़े रूप से कहता है।

४ विनीत नाट्यकार सदैव विनम्रता की मूर्ति तथा नम्र वचन बोलने वाला व्यक्ति होता है।

रंगशालायें

१	२	३
विकृष्टरंगशालायें,	चतुरस्त्ररंगशालायें	त्र्यस्तरंगशालायें

रंगशालायें
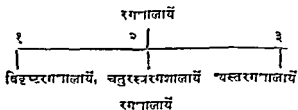
भरत मुनि जो नाटक शास्त्र के एक प्रामाणिक आचार्य माने गये हैं अपने नाट्य शास्त्र के पुस्तक में विकृष्ट, चतुरस्त्र, तथा त्र्यस्त तीन प्रकार के प्रेक्षागृह बतलाये हैं।

भारतीय नाट्य शास्त्र के पंडितों ने पात्रो के विवेचन करने में स्वाभाविक पात्रों के कार्यों के ऊपर ही इनका वर्गीकरण किया है। पुरुष तथा स्त्री ये दो मनुष्य जाति के मूल विभाग हैं। नाटक में पुरुष और स्त्री पात्र ही प्रयुक्त होते हैं और ये ही नाट्य शृंखला को बढ़ाने का कार्य करते हैं। उस प्रधान पुरुष पात्र को जो नाटक में सर्वोपरि होता है। नायक शब्द से सम्बोधित करते हैं। जिस प्रकार प्रधान पुरुष पात्रों को नायक की संज्ञा दी गई है उसी प्रकार से प्रमुख स्त्री पात्र को नायिका की संज्ञा आचार्यों ने दी है।

नाटक के प्रमुख कार्यों का कर्त्ता जो मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, शुचि, लोकप्रिय, चुभती बात को प्रिय रूप में स्पष्ट कहने वाला, उत्साही, तेजस्वी, आत्मसम्मानी, धार्मिक, दृढ़, शूर, शास्त्रचक्षु स्मृतवान, बुद्धिमान, प्रज्ञामान, युवा, दृढ़ और रूढ़वंशीय होता है, आचार्यों द्वारा नायक माना गया है। वह पुरुष जो इन गुणों से युक्त नहीं है, नायक नहीं है।

नायक अवस्थानुसार

नायक के भेदों के ऊपर विचार करते समय हमें भिन्न भिन्न आचार्यों के विभिन्न मत मिलते हैं। कुछ लोगों ने तो नायकों के धर्म के अनुसार नायक के भेद किए हैं।

ने उन नृत्यों के भिन्न भिन्न रूप धारण कर लिये, जैसे हास्य, करुण और इसी से करुण और हास्य नाटकों की सृष्टि का श्रेय इन्हा लोगों को है। इस नृत्य में ५० आदमी होते थे। बकरी का चम ओढ़कर के तथा चेहरे लगा कर वे अभिनय करते अभिनय में ये कान पैर भी पशुओं सा बना लेते थे। अजागीत जिसमें आगे चल कर करुण नाटकों की उत्पत्ति हुई, इसकी विकसित कलाओं का एक सुन्दर फल है। आज कल भी थ्रेस आदि कुछ स्थानों में बकरी की खाल पहन कर नाटक होते हैं। स्थान स्थान पर लोग पट्टीटस देवताओं के उत्सव में यम खेल खेलते थे। यूनानियों के नाटकों के मुख्य आधार यही देवता और चरित्र है। अजागीत ही योरप के करुण नाटकों के पिता है। वास्तव में यूनान के करुण नाटकों का आरम्भ इलियड, होमर के महाकाव्यों से हुआ है। अस्तु इस प्रकार करुण नाटकों का प्रधानता प्राय सिकन्दर के समय तक थी।

प्राचीन काल में यूनानी अश्लील गीतें गाकर और इन्द्रियों के चिह्न बनाकर पूजन करते। आगे चल कर सुमरियन जा मारीसिका निवासी था उसने कुछ परिवर्तन करके स्वयं शुद्ध सभ्य गीतें उसी प्रकार की बनाईं, सिकन्दर के समय तक यूनानी नाटकों में करुण रस की अधिकता रही पर इसके बाद हास्य के नाटकों का आरम्भ हुआ। इसके नाटकों में प्राय २४ पात्र हुआ करते थे, और पात्रों का प्रवेश कथोपकथन, प्रस्थान, परिहास आदि से होता था। आरम्भ में इनमें, ऐतिहासिक पौराणिक, सामाजिक या राजकीय व्यक्तियों की हँसी उड़ाई जाती थी।

क्रिया के अनुसार

१ अनुकूल नायक वह पुरुष होता है जो एक ही स्त्री पर आसक्त हो और दूसरी स्त्री को आकांक्षा न करे। यथा

ग्रीषम निदाघ समै बैठे अनुराग भरे,
बाग में बहाती बहतोल है रहट की।
लहलही माधुरी लतानि सो लपटि रही,
होतल को सीतल सोहाई छाँह बट की।
प्यारी के बदन स्वेद सीकर निहारि लाल,
प्यारी प्यार करत बयार पीत पट की।
पत्र बीच कढ़े कहूँ रवि की मरीची,
तहाँ लटकि छबीलो छाँह छावत मुकुट की।

२ अनेक स्त्रियों पर समान प्रेम करने वाला दक्षिण नायक कहलाता है।

बादि छवों रस व्यंजन खाइवो, बादि नवों रस मिश्रित गाइवो।
बादि अरायपजंक बिछाय, प्रसून घने परिपाइ लुटाइबो॥
"दास" जू बाद जनेस, मनेस, धनेस, फनेस रमेस कहाइबो।
या जग में सुखदायक एक, मयङ्क मुखी को अङ्क लगाइबो॥

३ धृष्ट नायक वह अपमानित लज्जा हीन अधम पुरुष है जो अपमानित कभी नहीं होता है।

किया पर इङ्गलैंड में शेक्सपीयर के आ जाने से नाटकों का पूर्ण रूप हो गया।

अंग्रेजी नाटकों का Tragedy, Comedy and Farce जिन्हें हम सुखान्त, दुखान्त तथा हास्यात्मक कहेंगे तीन भाग किया गया।

Tragedy का सब प्रथम विकास ग्रीक नाटकों के अन्तर्गत मिलता है। ट्रेजडी का विकास ५३० बी० सी० में एथेनिया में हुआ और यही आगे चल कर सब यूरप में प्रचलित हुआ। यह एक दुखान्त नाटक होता है। दुखान्त नाटकों का प्रचार जिस प्रकार पश्चिमीय देशों में हुआ था पर इसका भारतवर्ष में प्रचार बिलकुल नहीं था। भारतवर्ष में दुखान्त नाटकों का आरम्भ अंग्रेजी नाटक के सम्पर्क का फल है। अंग्रेजी नाटककार सेक्सपियर के मेकबेथ, हैमलेट इत्यादि इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

Comedy या सुखान्त नाटकों का प्रचार सारे संसार में था। भारतवर्ष में तो इसका प्रचार बहुत ही आदि काल से था। पर पश्चिमीय देशों में इसका प्रचार ग्रीक देश के नाटकों के समय से ही मिलता है। सर्व प्रथम ४४८ बी० सी० में (Aristophanes) एरिस्टोफेनस ने ग्रीक कैमेडी को एक उचित रूप प्रदान किया और यही से अंग्रेजी आचार्यों ने कोमेडी का आरम्भ माना है।

Farce—जिसे हम प्रहसन कह सकते हैं अंग्रेजी में हास्य के नाटक के उपयोग में आता है। फार्स तीन अंकों का एक हास्यात्मक नाटक होता है।

१ शोभा—के अन्तर्गत शौर्य या वीरोचित दशा का वर्णन होता है।

२ विलास—नायक के चाल ढाल में जो शानदारी या मुग्धता होती है इसके अन्तर्गत आता है।

६ लालित्य—प्रेम में आवृत तथा चेष्टा में अस्वस्थता इसमें होती है।

७ औदार्य—उदारता की शक्ति इसमें होती है।

नोट—और गुणों की परिभाषा परम प्रचलित होने के कारण नहीं दी गई है।

नायक के साथी

पीठमर्द
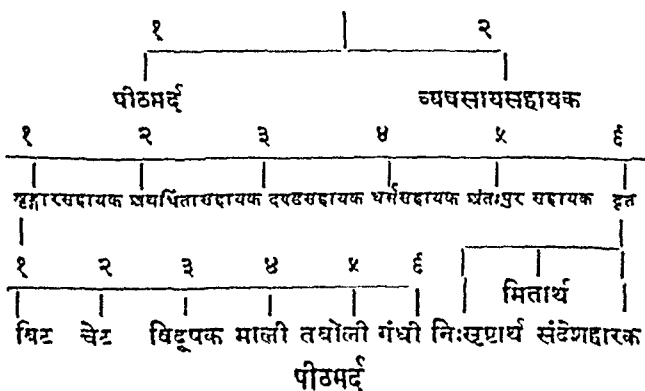
यह नायक का मुख्य सहायक होता है। यह उसका अंतरंग मित्र होता है। प्रासंगिक कथावस्तुपताका का यह नायक होता है। अधिकारी नायक के सभी गुण इसमें

language of ordinary life, although on the other hand it fails if it be artificial A single false not of artificiality will ruin a scene, अर्थात् ड्रामा की भाषा निश्चित रूप से प्रतिदिन की भाषा नहीं होती, पर यदि यह अस्वाभाविकता से युक्त होती तो उस अवस्था में सराहनीय नहीं है। एक दृश्य में एक छोटा सा भी कृत्रिम कार्य उसका नाश कर देता है। दुखान्त नाटककार के विषय में Nicoll निकल महाशय का मत है कि 'Tragic poet has liberty to lower his style when he wishes, so as to weep and lamante" ट्रेजडी के नाटककार को भाषा को साधारण बनाने का आज्ञा है क्योंकि उसे विनय पूर्ण व्याख्यानों का प्रदर्शन करना होता है जिसमें कि दर्शकों के हृदय में उस पर दुख प्रगट करने का अवसर आये।

(७) पात्रों का नाटक के अन्तर्गत घटना क्रम के अनुसार चलना पड़ता है क्योंकि नाटक के वर्णनीय विषय का विकास पात्रों के ही आधीन होता है।

(८) नाटककार को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि इसके अन्तर्गत उपन्यास के गुण न आ जाय क्योंकि इसमें नाटक में घटना आकस्मिक भी हो जाती है पर उपन्यास में यह नहीं होता है।

(९) अंग्रेजी नाटक के अन्तर्गत एक जो सकलन (unity) की प्रधानता है वह बड़ा ही सराहनीय है। अंग्रेजी आचार्यों ने सकलन (unity) को तीन भाग में बांटे हैं। unity of Place स्थल सकलन, unity of time काल सकलन, unity of Action कार्य सकलन। इसका विचार

धर्म के अनुसार
- १ स्वकीया
- २ परकीया
- ३ सामान्य

अवस्थानुसार
- १ प्रोषितपतिका
- २ खंडिता
- ३ कलहान्तरिता
- ४ विप्रलब्धा
- ५ उत्कंठिता
- ६ वासकसज्जा
- ७ स्वाधीनपतिका
- ८ अभिसारिक—१ कृष्णा
  - २ शुक्ला
  - ३ दिवा
- ९ प्रवत्स्यत्पतिका
- १० आगतपतिका

१ प्रकृत्यनुसार नायिकाओं का विभाजन

(क) उत्तमा—उत्तम रूप से दूतत्व करने वाली प्रिय भाषणी स्त्री को उत्तमा कहते हैं।

होत हरे नव अंकुर की छवि छाँह कछारन में अनियारी।
त्यों "द्विजदेव" कदम्बन गुच्छ नवह नए उनये सुखकारी॥
कीजिये वेगि सनाथ उन्हें चलिए घन कुंजन कुंज विहारी।
पावस काल के मेघ नए, नव नेह नई वृषभानु दुलारी॥

(ख) मध्यमा—मध्यम रूप से दूतत्व करनेवाली प्रियम्वदा स्त्री।

कुछ विद्वानों ने यह भी लिखा है कि हर्ष एक नाट्यकार नहीं हुए हैं क्योंकि हर्ष के सभा में पंडितों ने ही सम्भवतः अपनी रचनाओं को इनके नाम से कर दिया है। पर आगे चलकर यह सिद्ध हो जाता है कि हर्ष ने स्वयं रत्नावली प्रियदर्शिका का निर्माण किया है। उपरोक्त दोनों पुस्तकें नाटिका के अन्तर्गत आती हैं।

कालिदास के सामने यदि मैं हर्ष के स्थान को रखकर देखूं तो इन दोनों में एक महान अन्तर दिखाई देगा क्योंकि कालिदास एक महा कवि थे। हर्ष के अन्तर्गत हम सरल तथा सुन्दर वाक्यों का प्रयोग उसी कुशलता से पाते हैं जैसे कि कालिदास में सुन्दर दूरदर्शी विचारों का—हर्ष के कथानक में कोई नवीन आख्यान नहीं वर्णित है पर हर्ष में कथाविस्तार की एक अद्भुत शक्ति मिलती है। नाटक या नाटिका इनका सूत्रपात छोटे छोटे घटनाओं के एक सामूहिक अवस्था के प्राप्ति के बिना नहीं हो सकता, छोटी छोटी घटनाएं ही नाटक में जटिलता का प्रादुर्भाव करता है और इन्हीं को एक सुचारु ढंग पर प्रवाहित करना एक सफल नाट्यकार की विशेषता है। हर्ष के अन्तर्गत इस गुण का हमको एक सुन्दर चित्र मिलता है।

हर्ष की भाषा पूर्ण परिपुष्ट भाषा इत्यादि साहित्यिकों के समान है—जहां आपने प्राकृत का प्रयोग किया है वहां पर हमें शौरसेनी तथा महाराष्ट्री प्राकृत का रूप मिलता है। इस प्रकार से हम और पुराने नाट्यकारों के समान इनकी भाषा में भी संस्कृत तथा प्राकृत दोनों का प्रयोग पाते हैं।

विषय के अधिक विस्तार के कारण हम यहां पर इनके

आनन में मुसक्यान सुहावनी, वंकुरता अँखियानि छई हैं।
बैन खुले मुकुले उरजात, जकी तिय की गति ठौनि ठई हैं॥
"दास" प्रभा उछलै सब अंग सुरंग—सुबासता फेलिमई है।
चन्द्रमुखी तन पाय नवीनों, भई तरुनाई आनन्दमई है॥

२ मध्या—जिस नायिका की अवस्था में लज्जा और मदन की समानता होती है, उसको मध्या कहते हैं। इसमें कामनाओं की विह्वलता आ जाती है। यथा—

लाज विलोकन देति नहीं, रतिराज विलोकन ही की दई मति।
लाज कहै मिलिये न कहूँ, रतिराज कहे हित सो मिलिये पति॥
लाजहू की रतिराजहू की, कहे 'तोष' कछू कहि जात नहीं गति।
लाल तिहारी पै सौह करौ, यह बाल भई है दुराज की रैयत॥

प्रौढा—संपूर्ण कामकलादि में रत तथा आनन्द उठाने वाली नायिका जिसके अन्तर्गत प्रगल्भता आ जाती है। इसके क्रियानुसार रति प्रिया अर्थात् रति कराने मे इच्छा वाली तथा आनन्द सम्मोहिता दो भेद किये गये हैं। प्रौढा का निम्नलिखित उदाहरण है।

कुंज गृह मंजु मधुप आमन्द राजे,
तामें कालिह स्यामै विपरीति रचि राचीरी।
"द्विजदेव" कीर कल कंठन की धुनि जैसी,
तैसिवे अभूत भाई सूत धुनि मान्चीरी।
लाज वस वामन्नाम छाती पै छली के माने,
नाभि त्रिवली ते दूजी नलिनि उमाचीरी।
उपमा हुती पै मानी देवतन साँची,
यातें विधिहि सतावै अजौं सकुचि पिसाची।

है। नन्दन जो कि राजा का एक सहचर है चाहता था कि मालती का विवाह राजा के आज्ञा से हो और इस प्रकार विवाह को तुरन्त होने नहीं दिया। इस विवाह के तुरन्त न हो जाने के कारण मालती जो कि कठिनाइयों को झेलती है एक दया की मूर्ति बन जाती है। माधव की भी दशा अच्छी नहीं रहती—अन्त में जब मालती गायब हो जाती है तब माधव बड़ा ही विक्षिप्त हो जाता है। माधव अपने प्रेयसी को अन्त में खोजकर लाता है और दोनों का विवाह फिर अन्त में राजा कर देता है।

उत्तर रामचरित्र जैसा की नाम से विदित है रामचन्द्र के जीवन का अन्तिम घटनाओं पर अवलम्बित है। सीता का वनवास हो जाना उनका विलाप तथा लवकुश की शूरता नाटक में बड़ी मार्मिकता से वर्णित है। उत्तर रामचरित्र एक अपूर्व नाटक है। इसमें की घटनायें बड़ी मार्मिक तथा हृदय स्पर्शी हैं।

भवभूति के भाषा के अन्तर्गत शौरसेनी प्राकृत का अधिक प्रभाव पड़ा है। भाषा के अन्तर्गत वह सुचारुता नहीं जो हमें कालिदास के अन्तर्गत मिलती है।

भवभूति के नाटकों का कीथ ने बहुत उच्च स्थान नहीं प्रदान किया है विदूषक का भी अभाव मालतीमाधव के अच्छा नहीं माना गया है। जिसके कारण हास्य का सुन्दर निरूपण इसमें नहीं हो सका है। प्लाट तो इसका अच्छा है पर कार्यकलापों का घटना चक्र पर इतना निर्भर रहना कि जिससे अस्वाभाविकता प्रगट होने लगे अच्छा नहीं है। महावीर

अति सूधो सनेह को मारग है, जहां नेकौ सयानप बांक नहीं।
तहां सांच चलैं तजि आपुनपौ, झिझकै कपटी जो निसांक नहीं॥
'घनआनन्द' प्यारे सुजान, सुनो इत एकतैं दूसरौ आंक नहीं।
तुम कौन धौ पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं॥

(ग) सामान्या

सामान्या—केवल धन से प्रेम करने वाली स्त्री को सामान्या या गणिका कहते हैं। इसके अन्यसुरतदुखिता, गर्विता तथा मानवती ये तीन भेद हैं। सामान्या का उदाहरण—

नाचति हैं, गावति हैं, रीझति रिझावति हैं,
लीवे ही का धावत बात सुनति न पिय की।
तन को सिगारैं नैन कज्जल सुधारे,
अति वार वार वारै प्रान ऐसी रीति तिय की॥
'गूँधर' सुकवि हेतु धन ही के यार वधू,
और न विचरैं कछू यहै बात जिय की।
लाल चाहै जिय सो कै लाल मेरे हिय लागै,
लाल चाहै हिय सों कै माल लीजे पिय की॥

१ अन्यसात दुखिता—प्रिय सम्भोग चिन्हित स्त्री पर दुख प्रगट करने वाली स्त्री को अन्यसुरतदुखिता कहते हैं।

आई छल छन्द सों गोविन्द संग खेलि फागु,
केसरि के रंग को सुअग छवि छ्वै रही।
कहैं कवि "दूलह" न जानि परी कौतुक मे,
पाछिले पहर की रजनि घरी द्वै रही।
धाय घर जाय न्हाय नूतन बसन साजि,
आरसी लै हेरे मुख दुनी दुति ज्वै रही।

या

मिलता है। चाणक्य एक महान राजनीतिज्ञ था। उसने भारत के तत्कालीन परिस्थिति को चन्द्रगुप्त के हाथ में करने के लिये राक्षस मंत्री को उसके वश में करने का विधान किया है।

मुद्राराक्षस भारतवर्ष के महान नाटकों में से एक है। यदि प्रेम के पाठ का शकुन्तला उदाहरण है तो राजनीति के सम्बन्ध का यह एक महान नाटक है। नन्द वंश के नाश की प्रतिज्ञा करके चाणक्य उसके राक्षस मंत्री को अपने बुद्धि से उन उन षड्यन्त्रों में न्यस्त कर दिया करता है कि राक्षस मंत्री की बुद्धि भी चक्कर खाया करती थी।

इस नाटक का कथानक एक बड़ा ही मनोरंजक कथानक है। चाणक्य तथा राक्षस का चरित्र चित्रण बड़ा ही अच्छा हुआ है। नाटक का प्लाट एक ऐसे विलक्षण घटनाओं से होकर के समाप्त होता है कि किंचित् कभी भी इस पढ़ने से चित्त नहीं ऊबता। छोटे छोटे चरित्र भी बड़ा कुशलता से इसके अन्तर्गत दिखाये गये हैं।

विशाखदत्त की भाषा एक चलती हुई भाषा है। सरलता बोधगम्यता इसकी प्रधान विशेषता है। भाषा के अन्तर्गत हमें सुन्दर रूपक तथा उपमायें मिलती हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि यह अपने काव्य के ऊपर पूर्ण ध्यान रखते थे। शौरसेनी प्राकृत का इसमें स्थान स्थान पर प्रयोग है।

भट्ट नारायण

यह एक वीर रस के नाटककार हुये हैं। आपका वेणीसंहार जो कि महाभारत के प्रसिद्ध कथानक पर आधारित है एकमेव वीर रस का संस्कृत में एक ही नाटक है। कथा का यहाँ विस्तार अधिक प्रचलित होने के कारण नहीं दिया जाता है। कवि महोदय के

अवस्थानुसार विभाजन

अवस्थानुसार नायिकाओं के निम्नलिखित भेद किये गये हैं।

१ प्रोषित पतिका—प्रिय के परदेश जाने से दुखित।

पति प्रीति के भारन जाति उनै,
मति खवै दुख भारन साले परी।
मुख बात ते होती मलीन सदा,
सोई मूरत पौन के पाले परी।
'द्विजदेव' अहो करतार !
कछू करतूति न रावरी आलै परी॥
यह नाहक गोरी गुलाब कली सी,
मनोज के हाथ हवाले परी॥

२ खंडिता—उस कुपित स्त्री को कहते हैं जो अपने पति को अन्य स्त्री के सम्भोग करने के चिन्ह को प्रातःकाल उसके आने पर पाती है।

लै सुख सिन्धु सुधा मुख सौति कै, आये उतै रुचि ओट अमी की।
त्योंही निसंकलई भरि अंक, मयंकमुखी सुसंकित जी की।
जानि गई पहिचानि सुगंध, कछू छिन मानि भई मुख फीकी।
ओछे उरोज अगोछि अगोछनि पोछत पीक कपोलनि पी की।

नोट—इसके भी प्रोषितपतिका के सदृश मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकिया, खंडिता ये उपभेद होते हैं।

३ कलहान्तरिता—अपने प्रेमी का अपमान कर के पश्चात्ताप करने वाली स्त्री कलहान्तरिता होती है। यथा—

कपूरमजरी का लिखना तो इन्होंने अपने स्त्री के अवरोध पर आरम्भ किया था। राजशेखर के उपरान्त सस्कृत साहित्य में छोटे छोटे नाटककार होते रहे पर कोइ महान नाटककार इनके बाद सस्कृत में नहीं हुआ।

सस्कृत नाटकों का अधःपतन

जैसा की मैंने पूर्व में ही साकेतिक रूप से निवेदित कर दिया है कि राजशेखर तथा मुरारि आदि प्रमुख अन्तिम नाटककारों के समय से ही इस कला के अध पतन का कायड प्रारम्भ हो गया था, पाठकों को स्मरण होगा। सस्कृत भाषा का भी तत्कालीन समय में अध पतन हो रहा था, सस्कृत का ज्ञान लोगों में कम कम ही रह गया था। ऐसी अवस्था म हम यह देखते हैं कि तत्कालीन सस्कृत साहित्य की चाह केवल विद्वानों तथा राजाओं में ही रह गइ थी इस कारण से नाटक का साहित्य धीरे धीरे कम होने लगा था। नाटककार का काय केवल नाटक को लिख देना ही नहीं है क्योंकि वैसी अवस्था में नाटककार सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है। नाटककार को तो अपने देश काल की परिस्थितियों के अनुसार चलना आवश्यक है। उसे जनता का ध्यान सदैव रखना पड़ता है।

जिस समय की भाषा की यह दशा थी उस समय सस्कृत के नाटककारों ने इस पर कुछ भी ध्यान न देकर अपनी रचनायें कीं और इसी प्रथम कारण से सस्कृत नाटकों का अध पतन आरम्भ हुआ।

मुसलमानों का आक्रमण जिस प्रकार भारतीय सभ्यता को नष्ट करने में सफल हुआ वैसे ही साहित्य पर भी यवनों ने काफी धक्का पहुँचाया। नाटकों का अभिनय उन सारे प्रान्तों में बन्द हो

६ वासकसज्जा—केलि के लिए तटस्थ अपने आप उसके लिए तैयार तथा और आवश्यक सामग्री से युक्त स्त्री को वासक सज्जा कहते हैं। यथा—

पौरनि पांवडे परे हैं पुर पौरि लगि,
धाम धाम धूपन की धूम धुनियत हैं।
कस्तूरी अतर सार चोवा रस घनसार,
दीपक हजारन अध्यार लुनियत हैं॥
मधुर मृदंग राग रंग की तरगनि मे,
अंग अंग गोपिन के गुन गुनियत हैं।
देव सुख सज महराज बृजराज आज,
राधाजू के सदन सिधारे सुनियत है॥

७ स्वाधीनपतिका—प्रिय को वशीभूत करने वाली स्त्री को स्वाधीन पतिका कहते हैं।

चढ़ी ऊँची अटा पर बाँसुरी ले, अब नाम हमारो बजाइये ना।
सुनि चौचंद होंइ चवाव करें, यह बात कवौ बिसराइये ना॥
'कमलापति' सांची कहा इतनी, सुनि कोइ कछू मन लाइये ना।
बिनती परि पांय निहारी करौं, कुलकानि हमारी गंवाइये ना॥

८ अभिसारिका—वह स्त्री होती है जो अपने प्रिय को एक निर्दिष्ट स्थान पर मिलने को कहती है और वहाँ स्वयं जाती है। इसके भी मुग्धा, मध्या और प्रौढा भेद होते हैं। पर परकीया के तीन और भेद कृष्णा, शुक्ला और दिव्या अभिसारिका होते हैं।

१ कृष्णाभिसारिका—प्रिय को संगम स्थल पर बुलाने

षड़ा अ तर है। जिस प्रकार से एक नव जात शिशु में तथा युवा पुरुष म अ तर होता है उसी प्रकार से आजकल के भाषा तथा आदि भाषा में भी अ तर स्पष्ट रूप से विदित है। गद्य के ज म हो जाने के उपरा त गद्य साहित्य के और और अगों का ज म प्रारम्भ हुआ अस्तु निबन्धे तथा गद्य के नाटकों का भी हिन्दी में इसी समय से ज म हुआ पर भारते दु जी ने अपनी नाटक पुस्तक में सर्व प्रथम नाटक महाराज विश्वनाथ का 'आन द रघुनन्दन' माना है और दूसरा अपने पिता के नहुष नाटक को माना है। ये दोनो पद्य म लिखे हैं। हि दी गद्य नाटकों का इतिहास हमें १६वीं शता दी में सर्व प्रथम मिलता है। गद्य साहित्य के निर्माण में तटस्थ महारथियों ने नाटको में अपने प्राचीन भारतीय सस्कृत साहित्य के नाटकों का अनुवाद सर्व प्रथम किया और धीरे धीरे फिर हम हि दी के मौलिक नाटकों का भी दर्शन हुआ। इससे हमें हिन्दी में अनुवादित तथा मौलिक दो प्रकार के नाटक मिलते हैं। इस स्थान पर इस विषय पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा क्योंकि नाटकों के क्रमिक विकास पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

बगला साहि य जो कि हि दी के पूर्व एक उच्च शिखर पर विराजमान था अपने साहित्य के ऊपर गर्व करता था। बगाल के महान कवि बाबू रवी द्र नाथ जी के प्रभाव मे जिस प्रकार से हि दी म रहस्यवाद की कविताओं का ज म हुआ उसी प्रकार बकिम बाबू तथा द्विजेन्द्र लाल राय के नाटकों के अनुवाद ने हि दी क नाटकों को उत्तेजित किया।

इस स्थान पर हम भारते दु बाबू क श दों में जो कि नाटकों के विषय में सर्वमा य हैं यहाँ पर दना चाहता हूँ। 'अथ भाषा नाटक " शीर्षक के अ तर्गत आप नाटक अथवा दृश्यका य

१० आगतपतिका—वह स्त्री जो पति के आगमन से प्रसन्न हो।

एक आली गई कहि कान में आय, परी जहाँ मैं न मरोरि गई।
हरि आए विदेश तें "वेनी प्रवीन" सुने सुख सिंधु हिलोरि गई॥
उठि वैठि उतायल चाय भरी तन, मैं छन मैं छवि दौरि गई।
जेहि जीवन की न रही हुती आस सजीवन सी सो निचोरि गई।

पंचम अध्याय

रस और नाटक

नाटक लिखते समय लेखक के समक्ष जो प्रथम प्रश्न उठता है वह यह कि नाटक किस रस मे लिखा जाय। संस्कृत के नाटक-कारों ने नाटकों के लिखने के समय रस का एक प्रधान ध्यान रख, एक ही रस का परिपाक एक नाटक के अन्तर्गत किया है। यदि नाटक शृंगार में लिखा जाता है तो उसमें शृंगार की प्रधानता रहेगी, अर्थात् वह नाटक एक शृंगार रस प्रधान काव्य रहेगा। नाटक के कथानक में भिन्न भिन्न परिस्थितियाँ उपन्यास के समान उत्पन्न होती हैं, अन्तर दोनो मे इतना है कि नाटक पर्दे पर अभिनय के रूप में उपस्थित किया जाता है पर उपन्यास नहीं। यदि भारद्वाज का आश्रम दिखाना है, तो पर्दों के सहायता से तथा और आवश्यक वस्तुओ से आश्रम का दृश्य दिखाया जायगा। अस्तु यहाँ मेरे कहने का अभिप्राय यह है

हिंदी भाषा में नाटकों का वास्तविक जन्म सब प्रथम अनुवादों से ही मानना पड़ता है, बंगला भाषा के नाटकों की धूम ने हिन्दी में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। हिन्दी में नाटकों की संख्या पूर्व काल में इतनी अगण्य है कि उससे महादुख होता है। भारतेन्दु जी के विचारों को देने के उपरान्त मैंने इस विषय को क्यों उठाया यह प्रश्न होता है। इसका साधारण उत्तर यह है—कि हिन्दी में 'नहुष' नाटक के उपरान्त जो नाटक आता है वह अनुवाद ही है। नहुष के विषय में लोगों का मत है कि यह पूर्णरूप से नाटकीय तत्वों युक्त ही है। इसलिए अनुवाद के प्रश्न को जाग्रित किया गया है। राजा लक्ष्मणसिंह ने सम्वत् १९१९ में अभिज्ञान शाकुन्तला का अनुवाद किया और धीरे धीरे यह परम्पर बढ़ती ही गई। भारतेन्दु बाबू ने भी आगे चल कर के संस्कृत के मुद्राराक्षस इत्यादि नाटकों का अनुवाद संस्कृत से किया था। भारतेन्दु बाबू ने १९२२ में जो बंगाल का परिभ्रमण किया तो इसका उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने सन् १९२५ में "विद्या सुन्दर" नामक नाटक का अनुवाद हिन्दी में किया और इस प्रकार से बंगला साहित्य का हिन्दी से सम्बन्ध बढ़ा। द्विजेन्द्रजी के नाटकों के अनुवादों ने तो हिन्दी नाट्य क्षेत्र को अनुवादों से पूरित कर दिया। आगे चलकर अनुवादों की परम्परा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई और सब प्रथम प० मथुरा प्रसाद चौधरी बी० ए० ने हिन्दी में शेक्सपियर से मेकबेथ नाटक का सन् १८९३ में अनुवाद किया।

इस प्रकार से भारतेन्दु काल में ही नाटकों की सर्वतोमुखी प्रतिभा छा गई। नाटकों का रूप भारतेन्दु काल ही में प्रौढ़ता पा सका। नाटक क्या है, इसे कैसे ... चाहिये, इस विषय पूर्व

१ रति

प्रियतमा और प्रेमी के मिलने की [illegible]

२ हास

कौतुकार्य अनुपयुक्त वचन वा [illegible] र
आह्लाद युक्त मनोविकार [illegible]

३ शोक

प्रिय वस्तु के न रहने से जो मनोविकार [illegible]

४ क्रोध

अपमान से उत्पन्न हर्ष के प्रतिकूल जो [illegible]
क्रोध कहते हैं।

५ उत्साह

वीरता दया दान से उत्पन्न हुई इच्छा-वृत्ति [illegible]
कहते हैं।

६ भय

अपराध, विकृतशब्द, चेष्टा वा विकृतजीवादि से [illegible]
हुए मनोविकार को भय कहते हैं।

७ जुगुप्सा

अश्रद्धा से सब इन्द्रियों के सकोच को जुगुप्सा कहते हैं।

८ आश्चर्य

समझ में न पड़ने पर अचम्भा उत्पन्न होने वाले विकार
को आश्चर्य कहते हैं।

हिन्दी के नाटकों का इतिहास भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र प्रारम्भ होता है और मैं अब क्रमश: प्रत्येक नाट्यकार को अलग लेकर उनके विषय में अपनी सम्मति दूँगा। ेु से नाट्यकारों की गणना प्रारम्भ करने का कारण यह है कि प्रथम ये ही एक प्रमुख नाटक रचयिता हम लोगों के सन्म हैं। इनके पहले हम मौलिक हिन्दी नाटकों का किसी लेखक द्वारा इतनी मात्रा में नहीं पाते।

भारतेन्दु बाबू, जो हमारी भाषा के महान कवि नाटककारों में हो गये हैं। नाटकों के क्षेत्र में सर्व प्रथम ७८ आपने निम्नलिखित नाटकों का इस क्रम से लिखा। विद्या ु वैदिक हिंसा, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, अन्धेर नगरी विषमौषधम्, सती प्रताप, चन्द्रावली, माधुरी, पाखड नवमालिका, दुलभबधु, प्रेम जोगिनी, जैसा काम वैसा कपूर म जरी, नीलदेवी, भारत दुदशा, भारत जननी, विनय, वैदिक हिंसा।

भारतेन्दु के जीवन पर प्रकाश डालने की तो यहाँ पर आवश्य कता ही नहीं है पर यहाँ पर उनके नाटकों के ऊपर कुछ कहना आवश्यक है। भारतेन्दु बाबू के नाटकों को हम पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तीन विभागों में विभक्त कर सकते हैं। भारतेन्दु के नाटकों का इसके अतिरिक्त एक हम और विभाग जो करते हैं वह है अनुवादित तथा मौलिक।

भारतेन्दु बाबू ने अपने अनुवादित नाटकों में यथाशक्ति अपनी प्रतिभा का आरोप किया है। मुद्राराक्षस आपका एक अनुवादित नाटक है। इसके अन्तर्गत हम यदि विचार करें तो यह स्पष्ट रूप

वीभत्स

इसमें घृणा पैदा होने वाली भावना होती है। जैसे पीव, हाड़, मास, युक्त श्मशान का वर्णन इत्यादि

अद्भुत

इसमे आश्चर्य तथा विस्मय पैदा होता है। इसका वर्ण पीत है।

शान्त

इसमें काम क्रोध आदि भावो का शान्तरूप मिलता है। इसका वर्ण शुक्ल है।

इस प्रकार से इन नौरसों का वर्णन समाप्त कर मैंने इनके प्रमुख स्तम्भो को लिया है। मैंने इसमें स्थूल २ विभागों को लेकर ही पाठको को विषय के स्पष्ट हो जाने के लिये अधिक विस्तार करने का विचार नहीं किया है। वैसे तो प्रत्येक विषय के अनिवार्य आवश्यक अग मात्रों का ही मैंने इस पुस्तक में वर्णन किया है। क्योकि मैने इसमें प्रतिदिन काम में आने वाले विषयों को लिया है।

षष्ठ अध्याय

नाटयकार तथा रंगशालाएँ

नाटयकार

नाट्य शास्त्र के आचार्यों ने जिस प्रकार नाटक के अंग प्रत्यंग पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया है उसी प्रकार से नाट्यकारों

कारण यह भी था कि भारती कपनियाँ हिन्दी के नाटकों को खेलती भा न थीं जिसके कारण हिन्दी के लेखकों को अधिक उत्साह वधन के स्थान पर सब उन्हें हतोत्साह करते थे।

दशम अध्याय

हिन्दी के द्वितीय उत्थान के नाटककार

बा० गोपाल राम गहमरी
,, सीता राम
प० सत्य नारायण कविरत्न
राय देवी प्रसाद पूण
प रूप नारायण पाण्डे।

नाटकों का द्वितीय उत्थान १८५७—१८७७

गद्य साहित्य के द्वितीय उत्थान में जिस प्रकार स गद्य की भाषा में प्रौढ़ता आई और गद्य साहित्य के विविध अंगों की पूर्ति हुई उसी प्रकार से नाटकों म भी कुछ उन्नति हुई। अनुवाद का कार्य हा प्रधानतया इस काल में हुआ। जितने भी प्रमुख नाटककार इस काल म हुए उनमें अधिकतर लोगों ने अनुवाद का विशेष प्रधानता द रखी था। भारतेन्दु काल के अन्त में बाबू राधा कृष्णदास की प्रतिभा अपने समय में पूणरूप से विकसित थी। इस के बाद हम बाबू गोपाल राम गहमरी को सम्वत् १६४७ के पहले विद्याविनोद दनदशा, वनवीर, इत्यादि नाटकों के लेखक के रूप में पाते हैं। आप ही के समकालीन बा० राम कृष्ण वमा ने भी नाटकों का अनुवाद किया।

१ विकृष्ट प्रेक्षागृह—यह १०८ हाथ लम्बा प्रेक्षागृह होता है, यह पूर्ण रूप से सुसज्जित होता है। नाट्य शास्त्र में इसे देवताओं के लिये लिखा है। जिससे यह समझ पड़ता है कि यह परम्परा कि रंगशालायें बनी रहें बड़ी ही प्राचीन है। अभी हाल में एक ऐसी गुफा मिली है। जिसमे एक रंगशाला बनी हुई मिली है।

२ चतुरस्त्र—यह द्वितीय श्रेणी का प्रेक्षागृह है जो ६४ हाथ लम्बा तथा ३२ हाथ चौड़ा होता है और इसमें उच्च कुल के लोग वैठते थे।

३ त्र्यस्त—यह एक त्रिभुजाकार निकृष्ट रंगमच होता था। इसमे राजा, धनवान, सर्वसाधारण के साथ वैठते थे। रंगमंच मे नाटक खेलने के लिये तथा दर्शको के वैठने के लिये स्थान नियुक्त थे। वैठने का विधान जातीय पुरुषो के अनुसार होता था, जिसमे सर्व प्रथम स्थान ब्राह्मणो के लिये होता था, और उस स्थान के खम्भे सफ़ेद रंग मे रंगे रहते थे। जिस स्थान पर क्षत्री लोग वैठते थे उस स्थान के खम्भे लाल तथा वैश्यो का स्थान उनके उत्तर पूर्व दिशा में होता था। थोड़ा सा स्थान इतर जातियों के लिये भी रहता था और यदि किसी भी रंग-मञ्च मे जगह कम होती थी तो एक दूसरी मंजिल भी बनाई जाती थी।

जिस प्रकार दर्शकों के स्थानो को अलग अलग निर्धारित करने के आख्यान मिलते हैं उसी प्रकार से दर्शको के भी प्रार्थनीय तथा प्रार्थक दो विभाग किये गए हैं। उन लोगो को जिनकी उपस्थिति नाटककरता चाहता है वे प्रार्थनीय है पर जो स्वयं नाटक के कर्त्ताओं से नाटक देखने की प्रार्थना करें वे प्रार्थक दर्शक होते हैं।

आती है। आप ने मालतीमाधव, उत्तररामचरित आदि नाटकों का सुन्दर अनुवाद किया है। आपके सवैयों में ही अधिक तर नाटकों का अनुवाद है जो बहुत से प्रान्तिक शब्दों के संयुक्त प्रयोग है जैसे सिरोंमी व्रजभाषा में आपका हिन्दी साहित्य में एक अनुवादक के दृष्टि से अच्छा स्थान नहीं है आप की भाषा कहीं कहीं बहुत दुरूह हो गई है और इससे संस्कृत के साथ भी सवैयों में न आ सके हैं और भाषा भी चौपट हो जाती है।

अनुवादकों के विषय में केवल उनकी असफलता ही पाठकों के लिए विशेष करके जानने की वस्तु है क्योंकि केवल अनुवाद में लेखक सफल है कि असफल यह ही एक ऐसा विषय है जिस पर हम लेखक की प्रतिभा का आभास पाते हैं। क्यों कि यही वस्तु उसमें जानने योग्य है।

राय देवी प्रसाद पूर्ण ही एक ऐसे व्यक्ति इस द्वितीय उत्थान में हुए जिन्होंने कि एक चन्द्रकला—भानुकुमार नामक मौलिक नाटक लिखा है। इसका उद्देश साहित्यिक है न कि अभिनय का। यह व्रजभाषा की ललित पदावलियों से बीच बीच में सुशोभित है। आपने नाटकों का साहित्यिक दृष्टि से लिखा है अभिनय के दृष्टि से नहीं ऐसा ही मालूम होता है।

आपके बाद यों कहिए कि इस द्वितीय उत्थान के अन्तिम भाग में रूपनारायण जी पाण्डे प्रभृति एक आध लेखकों ने नाटकों का अनुवाद किया। द्विजेन्द्र लाल राय के नाटकों का ही अधिक अनुवाद बंगला से हिन्दी में हुआ है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि १९५७ से १९७३ के बीच में एक न तो मौलिक नाटककार हुए और न एक प्रमुख अनुवाद। यह कहना असंगत न होगा कि नाटक का कार्य इस काल में कुछ न हुआ। पर इसके

इस स्थान पर भारतीय नाटकों का एक मुख्य स्थान स्थिर कर लेने पर संसार के और देशो के नाटकों का क्रमिक वर्णन विचारणीय है। भारतीय सभ्यता के बाद हमें रोम तथा यूनान की सभ्यता पश्चिमीय देशों में विचारणीय है।

रोम के नाटक

२४० बी० सी० में एक भारी विजय के उपलक्ष में सर्व प्रथम रोम मे नाटक हुआ था। उसी काल में हास्य तथा करुण रस के भी नाटक बनाये गये थे, पर इन रोम के नाटकों पर यूनानी नाटकों का गहरा प्रभाव पड़ा था। रोमन नाटको की एकमय विशेषता उनकी राष्ट्रीयता ही थी यद्यपि चोथी शताब्दी तक में रोम के नाटक अपने सर्वोच्च शिखर पर विराजित थे, पर आगे चल कर उसका क्रमिक ह्रास ही होता गया। उन रोमीय रंगशालाओ की जो लगभग १८००० आदमियो मे भरी रहती थी अब केवल कान से उनकी कथा सुननी ही बाकी रही क्योंकि विलासिता के प्रादुर्भाव के साथ साथ उनका अभि-नय नाश हो गया।

यूनान के नाटक

यूनान में डायोनिसस देवता के उद्देश में एक उत्सव होता था और इसी समय में नाटक भी खेले जाने लगे। यूनान में डोरियन राज्यों मे यह प्रथा प्रचलित थी कि लोग देव मन्दिरो में बैठ कर भजन भाव व नृत्य किया करते, और इन्हीं में से प्रमुख व्यक्ति आगे चल कर भारतीय सूत्रधारों की तरह अपनी मंडली बना ली, और नाटक करने लगे। इन्हीं नृत्य कर्ताओ

नाटकों का तृतीय उत्थान १९७७ से अब तक

द्विजेन्द्र जी के नाटकों के अनुवादों के आने से नाटकों की अभिरुचि बढ़ चली। धीरे धीरे नाटकों की रचना की उन्नति का समय निकट दिखाई पड़ा। इसी समय पर सर्व प्रथम हम बाबू जयशंकर प्रसाद जी को हिन्दी के छायावाद या रहस्यवाद के प्रथम कवि और नाटककार के रूप में पाते हैं। प्रसाद जी एक नाटककार ही न थे वरन् वे कवि भी थे। इस समय पर प्रसाद ही केवल एक इस ओर आकृष्ट न हुए वरन् प्रसाद को देखकर इन्हीं के समय के और लोगों ने भी नाटक की ओर दृष्टि फेरी। इनमें पं० बेचन शर्मा उग्र, पं० गोविन्दवल्लभ पंत, श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी प्रमुख हैं। इसका प्रसार यहाँ तक हुआ कि मैथिली शरण जी ने भी अनघ नामक एक नाटक लिख दिया।

प्रसाद का इस काल में वही स्थान है जो भारतेन्दु का आरम्भिक काल में था। प्रसाद जी एक महान कलाकार थे।

बाबू जयशंकर प्रसाद

बाबू जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्व हमारे समक्ष एक कवि, एक कहानीकार तथा एक नाटककार के रूप में मिलता है। कविता के क्षेत्र में रहस्यवाद की जो अनवरत धारा का प्रवाह हुआ उसका श्रेय आप ही को है। इस प्रकार से जब हम प्रसाद जी के नाटकों के ऊपर ध्यान देते हैं तब हमें आप के ऐतिहासिक नाटकों का सर्व प्रथम ध्यान आता है जिनमें प्राचीनता की एक

साधारणतः यूनानी नाटकों के ३ युग माने गये—

१ प्राचीन युग—ईसा से ३६० वर्ष पूर्व।

२ मध्य युग—३०६ वर्ष पूर्व ईसा।

३ नवीन युग—जो ईसा के बाद आरम्भ हुआ।

मध्य युग में ही प्राचीन युग की अश्लीलता और भंडपन बहुत कम हो गया और नवीन युग मे तो उसे कई नये सुधारकों के द्वारा श्रृङ्गार और प्रेम पूर्ण कथाओ का भी प्रवेश होने लगा। यूनानी सभ्यता के साथ साथ यह प्रचार रोम को चला गया और वहाँ से अब सारे यूरप मे प्रचलित हो रहा है।

अंग्रेज़ी नाटक

योरप में प्रजा ने पोप के विरुद्ध आवाज़ उठाई और उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। पोप के डर के हट जाने पर जनता ने नाटको को भी जीवित किया और नाटकों का बढ़ाना शुरू किया जो गिरजा के प्रार्थना से प्रादुर्भूत है। नाटक वहाँ पर धार्मिक, सामाजिक नाटको के रूप में व्यवहृत हुये Renaissance पुनरुत्थान के साथ साथ साहित्यिक नाटक भी बनने लगे स्पेन, इटली इत्यादि में राष्ट्रीय सुन्दर नाटको का प्रथम प्रथम जन्म हुआ और जिसने नाट्यकला मे एक अद्वितीय चमत्कार उत्पन्न कर दिया।

योरप के और देशो के भांति इङ्गलैन्ड मे भी मध्य युग तक पुराने नाटको का अन्त हो गया, पर Elizebeth के राज्यारोहण से फिर नाटकों का प्रचार बढ़ा। धीरे धीरे शुरू मे इटेलियन भाषा के कुछ नाटको का प्रचार इङ्गलैंड मे हुआ। अंग्रेज़ी कवियो ने हास्य और करुण नाटक लिखने का सूत्रपात इन्हीं को देखकर

पर जहाँ हम इन नाटकों को छोड़कर दूसरे नाटक को देखते हैं तब हमें प्रस्तावना का अभाव ही दिखाई पड़ता है। प्रसाद जी ने अपने तीन नाटकों में प्रथम दृश्य प्रस्तावना के रूप में न रख कर के परिचायक के रूप में रखा है पर उस संस्कृत प्रणाली से उसका सम्बन्ध कुछ भी नहीं है। अजातशत्रु का यथार्थ आरम्भ दूसरे दृश्य से होता है क्योंकि पहला तो कतिपय पात्रों के परिचय का दृश्य है। पर जब हम स्कन्दगुप्त को देखते हैं तो उसमें प्रथम दृश्य में कतिपय पात्रों के परिचय के अतिरिक्त उन भयपूर्ण परिस्थितियों का भी ज्ञान है जिससे कथा वस्तु का प्रारम्भ होता है। पर विशाख तथा राज्यश्री के व्यापार शृङ्खला का आरम्भ प्रथम ही दृश्य से होता है। इस प्रकार से प्रस्तावना का प्रसाद जी में प्रयोग है—आशय कहने का यह है कि किसी भी एक नियम का इन्होंने नहीं पालन किया है वरञ्च समय काल के परिस्थितियों में पड़कर उन्होंने अपने को अधिक उपयोगी बनाने के हेतु परिवर्तन का व्रत धारण किया था और वह ठीक भी था।

उपरोक्त बातों के प्रसंग को समाप्त करने के उपरान्त हम यहाँ पर प्रसाद जी के भाषा पर विचार करेंगे प्रसाद जी का भाषा एक साहित्यिक भाषा है। सरलता का इसमें पूर्ण ह्रास है और यही कारण है कि आप के नाटक अभिनय के उपयुक्त नहीं हैं। भाषा की दुरूहता तो कहीं कहीं जैसे अजात शत्रु में आप लिखते हैं "तो मागधी कुछ गाओ। अब मुझे अपने मुखचन्द्र को निर्निमेष देखने दो कि मैं एक अतीन्द्रिय जगति की नक्षत्रमालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरदचन्द्र की कल्पना करता हुआ , की सीमा को लाँघ जाऊँ और तुम्हारा सुरभि निश्वास

कालिदास

भास के बाद संस्कृत साहित्य का महान कलाकार कालिदास आता है जो अपना संस्कृत साहित्य में वही स्थान रखता है जो शेक्सपियर अंग्रेज़ी साहित्य के कवियों में। कालिदास के जीवन वृत्त के विषय में केवल कपोल कल्पित कथाओं के अतिरिक्त और कोई प्रामाणिक कथा नहीं मिलती है पर संस्कृत के ग्रन्थों से तथा प्रचलित आख्याइकाओं से कालिदास के विषय में थोड़ा बहुत ज्ञान होता है। इनका समय भारत के प्रसिद्ध सम्राट विक्रमादित्य का समय है, विक्रमादित्य हिन्दू राजाओं में उतना ही गुणवान तथा साहित्य प्रेमी था जितना अकबर यवनों में। कालिदास जी आप के सभा के नवरत्नों में से एक थे और जिनका समय ५७ ई० पू० निश्चित किया गया है।

कालिदास ने तीन नाटक लिखे हैं प्रथम Malavikagnimitra द्वितीय विक्रमोर्वशी, त्रितीय शकुन्तला इनके इन नाटकों में विक्रमोर्वशी तथा शकुन्तला ये दो बड़े ही उत्कृष्ट कोटि के नाटक हैं। इस स्थान पर संसार के सर्वोत्कृष्ट नाटक के ऊपर ही विवेचन करना उपयुक्त ज्ञात होता है। इस नाटक के अन्तर्गत हम कालिदास के नाट्यकला का पूर्ण विकसित रूप देखते हैं। शकुन्तला जो कि एक वन कन्या थी तथा साध्वी थी एक नवागत पुरुष दुष्यन्त से जो कि राजा थे कैसे मिलनी इसके लिए कवि ने कितना सुन्दर, स्वाभाविक ढंग निकाला, गुरु जी आश्रम में नहीं थे दुष्यन्त आते हैं और शकुन्तला को जो एक मधु मक्खी के डर से भाग उनके पास शरणागत होती है बचाते है बस यहीं

विकराल पेट में भी पड़े रहते हैं। इसके उदाहरण के लिए स्कन्दगुप्त को उदासीनता एक सदुदाहरण है। स्कन्दगुप्त कहता है ' अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है। अपने को नियामक और कर्त्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है। उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल से भी अधिकार-लोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं (ठहर कर) उँह ! जो कुछ हो हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।" इन वाक्यों से उदासीनता की झलक कितनी मिलती है। इसका तो आप लोगों को अनुमान हो ही गया होगा। नागयज्ञ में जनमेजय कह उठता है ' यह साम्राज्य तो एक भार हो गया है " इस प्रकार से हमें इस निराशावाद का आभास पूर्णरूप से मिलता है। निराशावाद के दो प्रमुख आधार हैं। प्रथम है किसी महात्मा के व्यक्तित्व का प्रभाव और दूसरा है भाग्यवाद की अटल भावना। महात्मा का होना इनके नाटकों में एक प्रधान वस्तु है। महात्मा गौतम प्रख्यातकीर्ति बौद्ध महात्मा है। इस प्रकार से इससे अधिक विस्तार न देकर के हम अब इनके दूसरे दृष्टिकोण की ओर आकर्षित होते हैं।

प्रसाद कितने महान साहित्यिक थे इसका अनुमान उस समय होता है जब हम उनकी रचनाओं में आलोचना तथा सामाजिकता के विचारों को देखते हैं। प्रसाद जी एक देशभक्त, जातिप्रेमी तथा एक अपने प्राचीन सभ्यता के ऊपर गर्व करने वाले व्यक्ति थे।

आपके नायक सदैव एक उच्च आदर्श का रक्षक ही होता है। कवि प्रसाद को जब हम नाटक के क्षेत्र में देखते हैं तब वे हमें

भांति चला जाना कितनी स्वार्थपरता थी पर कवि को उसके चरित्र को उस रूप में रखना था और उसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

चरित्र चित्रण के विषय में कालिदास एक महान आचार्य थे वास्तविकता का ह्रास न हो यही आपके चरित्र चित्रण का प्रधान विषय था। कहीं अस्वाभाविकता न प्रगट हो यही आप का ध्येय था। विदूषक द्वारा हास्य का जो प्रयोग आपने कराया है वह परम स्वाभाविक है उस स्थान पर जहाँ वह अधिक हुआ जाता था उन्होंने चट रोक दिया है। अन्त में बस इतना कहना पर्याप्त होगा कि कालिदास ने अपने नाटकों को उसी रास्ते पर चलाया जैसी उनके समय की परम्परा थी। उन्होंने सारी उन वस्तुओं का प्रयोग किया है जो तत्कालीन समाज में प्रचलित थी।

आपके नाटक आचार्यों के लिखित विधानों के अनुसार विरचित है। नाटकों में भाषा का प्रयोग प्राकृत तथा संस्कृत दोनों ही हैं। आपके नाटक पूर्णरूप से नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार बने हैं—न कहीं कमी है न कहीं अधिकता है।

हर्ष

कालिदास के बाद संस्कृत नाटकों की परम्परा पूर्ण रूप से प्रसरित होने के कारण खूब विस्तार पाने लगी थी। इसी समय में हमारे समक्ष हर्ष एक प्रधान नाट्यकार के रूप में आते हैं जो कि भारत में ६०६ ई० शताब्दी में हो गए हैं। आपके ही राज्य काल में बाण संस्कृत के एक महान आचार्य होगये थे बाण ने हर्ष चरित्र नामक एक पुस्तक आपही के विषय में लिखी है।

अनन्त के सम्बन्ध की भावना का प्रादुर्भाव होता है और रहस्य वादी वह है जो इस सम्बन्ध के निकट पहुँच जाता है, उसमें इतना घनिष्ट संबन्ध हो जाता है कि वह अपनी आत्मा को भूल जाता है।" कबीर का रहस्यवाद—रामकुमार वर्मा।

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रसाद जी ने अपने नाटकों के अन्तर्गत रहस्यवाद को किस प्रकार रखा है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में रहस्यवाद को बहुत कम स्थान दिया है पर जहाँ पर हम प्रसाद जी के नाटकों में प्रयुक्त गानों को देखते हैं तो उनमें कहीं कहीं रहस्यवाद की छाप दिखाई पड़ती है। पर कहीं कहीं पर आपके पात्र भी रहस्यवादी होते हैं अजातशत्रु नाटक का दार्शनिक पात्र बिम्बसार अंधेरी रात्रि में मनुष्य की भाग्य लिपि पढ़ता है। इसी प्रकार एकाध स्थानों पर हमें छायावाद की युक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं।

वस्तु की व्याख्या करते समय यह स्पष्ट रूप से कहना पड़ेगा कि प्रसाद के नाटकों की वस्तु कल्पित न होकर ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक होने पर कोई कवि का विशेष वस्तु के निर्धारण में सुभीता नहीं हुआ है। प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में काल्पनिक पात्र लाये हैं। प्रसाद जी स्वयं स्कन्दगुप्त की वस्तु की व्याख्या करते हुए लिखते हैं देवसेना और जयमाला वास्तविक और काल्पनिक पात्र दोनों हो सकते हैं, विजया, कमला रामा और मालिनी जैसी किसी दूसरी नामधारी स्त्री की भी उस काल में सम्भावना हो सकती है। तब भी ये कल्पित हैं। पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सृष्टि जहाँ तक सम्भव हो सकी है नहीं होने दी है, फिर भी कल्पना का अवलम्बन लेना ही पड़ा है, केवल घटना परम्परा ठीक करने के लिए।"

और दो सामयिक नाटककार चन्द्र आदि का वर्णन न करके भवभूति के विषय में जो एक प्रधान कवि तथा नाटककार हो गये हैं लिखेंगे।

भवभूति

भवभूति का समय लगभग ७०० ई० में रहा होगा ऐसा विद्वानो का मत है। भवभूति व्याकरण छन्दशास्त्र, दर्शनशास्त्र के एक पूर्ण विद्वान थे। इनके जीवन वृत्त के विषय में और कुछ न कहकर इतना ही पर्याप्त होगा कि आप एक कवि और एक नाटककार के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। आपके तीन नाटक महावीर चरित्र, मालतीमाधव, तथा उत्तर राम चरित्र हैं। भवभूति के नाटकों का अनुवाद हिन्दी साहित्य में होने पर भी यहाँ पर उनके ऊपर और कुछ अंगुल्यानिर्देश करना आवश्यक प्रतीत होता है। महावीर चरित्र जो इनका प्रथम नाटक पाश्चात्य विद्वानों द्वारा माना गया है एक परम प्रसिद्ध कथा के ऊपर आधारित है। यह रामायण की राम-रावण संघर्ष की कथा पर आधारित है। It is an effort to describe the main story of the Ramayan by the use of dialogue) Keith Sanskrit Drama, p. 189.

मालतीमाधव यह एक प्रकरण है। इसकी कथा एक ऐतिहासिक है—प्रेम का विषय ही यहाँ पर प्रधानता रखता है। भूरिवसु ने जो कि राजा पद्मावत का मंत्री था अपने एक प्राचीन मित्र कमन्दक से अपने दूसरे मित्र जिनके पुत्र का माधव नाम था अपनी कन्या मालती के विवाह को स्थिर करने को कहा। इस प्रकार से कवि ने एक कथानक प्रारम्भ किया

और चरित्र का चित्रण भी परिस्थितियों के अनुरूप होता है।
हम इसी विचारधारा की बहुलता प्रसाद में पाते हैं।

चरित्र के दो मुख्य अंग होते हैं जिनमें प्रथम है सूचनात्मक
और दूसरा है विकासात्मक अर्थात् कथोपकथन में कुछ चरित्रों
को तो हम विकासात्मक पाते हैं और कुछ को सूचनात्मक।
नाटककार चरित्रों को इन दो अंगों का विकास इस प्रकार
कराता है और इन्हीं से चरित्र का चित्रण भी होता है। प्रथम
कथोपकथन के बीच पात्रों की बातें द्वितीय उनका स्वागत
कथन तीसरा उनके सम्बन्ध में दूसरों का किसी प्रकार से
कथन तथा चतुर्थ उनका स्वकीय व्यापार। इन्हीं से मनुष्य को
चरित्रों का पता मिलता है।

प्रसाद के चरित्रों को हम तीन प्रकार के पाते हैं प्रथम सुर,
द्वितीय असुर और तृतीय मनुष्य। गौतम, वेदव्यास आदि देव
चरित्र हैं और ये परिस्थिति के ऊपर हैं। असुर चरित्रों में
काश्यप, देवदत्त, शान्तिभिक्षु की गणना है। जिस प्रकार से
देव चरित्र भौतिक परिस्थितियों से उठकर आध्यात्म लोक में
अपना स्थान स्थिर करता तो आसुरी परिस्थितियाँ भौतिक
परिस्थिति के विकसित हो ही नहीं सकती। मनुष्य चरित्र के
अन्तर्गत वे हैं, जो न देवता है और न असुर वरञ्च जो इन दोनों
के मध्यवर्ती अवस्था में है।

प्रसाद चरित्र चित्रण में एक कुशल पुरुष हैं। उपरोक्त कथित
समस्त गुण आपमें विद्यमान हैं प्रसाद अपने पात्रों के चरित्र को
संघर्षमय बनाये हैं। अधिकांश पात्र इनके अपनी कुशलता से
बढ़ते बढ़ते इतने बढ़ जाते हैं कि उन्हें महात्माओं की ही शरण

चरित्र में भवभूति ने कोई नवीनता न लाकर कथानक को कृत्रिम बना दिया। इनके अन्तर्गत चरित्र चित्रण बड़ा ही हास्यास्पद है न तो राम का ही चरित्र उचित रूप पा सका है और न रावण का—(कीथ संस्कृत ड्रामा पृ० १६४) इसी प्रकार से उत्तर रामचरित्र को जो बारह वर्षों के आख्यान से पूरित है त्रुटियो से युक्त पाया गया है। बारह वर्ष के आख्यान को एक नाटक के स्थान देना ही सर्व प्रथम बड़ी भारी भूल है। पर मेरे विचार से सीता और राम का चरित्र इसमें वस्तुतः एक पूर्ण कला से युक्त है।

मेरे इन सब थोड़े से उदाहरणों से पाठक यह न समझें कि भवभूति का काव्य एक उच्च श्रेणी का नहीं है वरञ्च और सब विशेषताओं के होने के साथ भवभूति में उपरोक्त त्रुटियां भी हैं। भवभूति के अन्तर्गत एक प्रधान महानता हृदय के भीतर की बातों को जानने की कला थी। सीता का उत्तर रामचरित्र में चित्रण कितना स्वाभाविक है—वास्तव में उसके प्रत्येक शब्द उसके अन्तरात्मा के शब्द हैं उनमें न बनावट है और न कवित्व दिखाने की आकांक्षा। कवि के रूप में भी भवभूति एक कला कोविद थे यह मानना पड़ता है। पाश्चात्य विद्वानों के अन्तर्गत भी भवभूति का स्थान कालिदास के बाद आता है। अस्तु इस महान कवि के अन्तर्गत नाट्य कला कौशल न था मानना मूर्खता ही होगी।

विशाखदत्त तथा भट्ट नारायण

विशाखदत्त का समय लगभग चन्द्रगुप्त मौर्य का समय था। विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस नामक नाटक लिखा है। जिसके अन्तर्गत हमें तत्कालीन राजनीतिज्ञ चाणक्य के कार्य कलाओं का खेल

विस्तारित करने का तथा उसके उत्कर्ष का साधन होता है। प्रसाद में कहीं तो हमें यह मिलते हैं और कहीं नहीं। नाटकीय कथोपकथन तथा औपन्यासिक कथोपकथन में महान् अन्तर है। नाटककार अपने कथोपकथन को विस्तार न देकर एक सीमा के अन्तर्गत ही रखता है और नहीं उपन्यासकार आता है तो वह उसे अधिक विस्तृत रूप में लिखता है। नाटककार थोड़े ही से वाक्यों में बहुत कुछ कहला देता है, नाटककार थोड़ी सी बात कह कर आतुरता को प्रगट कर देता है, दर्शक उत्सुक हो जाते हैं कि आगे क्या होगा। उदाहरण के लिए स्कन्दगुप्त का कुभा नदी के बाढ़ में बह जाना बड़ा कौतूहलास्पद है, यह भी सम्भावना थी कि वह मर जाय और यह भी कि वह अवश्य रहेगा। इतने बड़े कथोपकथन को नाटककार ने बड़ी कुशलता से लिखा है। इसमें एक बात जो विचारणीय है वह यह कि कथोपकथन की भाषा एक बोधगम्य तथा स्वाभाविक होना चाहिए। क्लिष्ट भाषा का प्रयोग नाटक के महा हानिकारी है और इस दृष्टिकोण से प्रसाद सराहनीय नहीं हैं। क्योंकि क्लिष्ट भाषा से अभिनय में असुविधा होती है। और नाटक अभिनय की चीज है।

नृत्य, संगीत तथा दृश्य

नृत्य यह नाटक का एक प्रमुख अंग है जिस प्रकार नृत्य का प्रयोजन है वैसे ही संगीत की भी आवश्यकता नाटकों में अनिवार्य है, गीत का प्रयोग नाटकों में स्थान स्थान पर हुआ करता है। दृश्य तो एक प्रमुख वस्तु है। इसमें घटनाक्रम

विचार इस पर इस प्रकार है। व्यर्थ विस्तार के कारण इस नाटक की कथा का अभिनय नहीं किया जा सकता है। पर चरित्र चित्रण इसमें अच्छा हुआ है। दुर्योधन का एक सजीव चित्र है भीम की रक्त पिपासा की इच्छा इसमें पूर्ण रूप से निर्वाहित है। युधिष्ठिर का भी सात्विक गंभीर चरित्र है। इसके अन्तर्गत प्रेम की भावना अच्छी तरह से वर्णित नहीं है—भय का इसमें पूर्ण परिपाक है।

नाटक की शैली एक सुन्दर वर्णनात्मक शैली है। इसमें गंभीरता तथा सुचारुता है। इसके अन्तर्गत बड़ी बड़ी समासान्त प्राकृत की पदावलियाँ समावेशित हैं। स्त्रियों के लिये शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया गया है।

विशाख दत्त तथा भट्ट नारायण के काल के उपरान्त हमें ८ वीं तथा ९ वीं शताब्दी के कुछ ही नाटककारों का हाल मिलता है। कुछ नाटकों का यदि नाम भी मिलता है तो उनका पता ही अभी तक न चला है। इन सब कारणों से उपरोक्त नाटककारों के उपरान्त मुरारि तथा राज शेखर इन दो प्रमुख कवियों का नाम आता है। मुरारि का समय केवल भवभूति के बाद हुआ बस इतना ही पता मिलता है। ठीक रूप से तिथि या संवत् का पता अभी तक नहीं लगा है। अतएव इनका वर्णन इस स्थान पर न करके हम राजशेखर के विषय में अध्ययन करेंगे। राजशेखर एक क्षत्री कवि थे और इन्होंने अपनी उत्पत्ति रामचन्द्र के वंशजों से ही मानी है। आप ने कर्पूरमंजरी, बालरामायण, तथा बालभारत (असमाप्त) नाटक लिखे हैं। आपने अपने नाटकों को अधिकतर अपने उन राजाओं के लिये लिखा था जिनके ये आश्रित थे। पर

इस प्रकार से विचार करने पर यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे हिन्दी नाटकों का कोई भी अपना क्षेत्र नहीं है। पारसी कम्पनियों द्वारा बेताब जी व तथा राधेश्याम जी कथावाचक के नाटकों का अभिनय कुछ हुआ पर आगे चलकर के उनका भी ह्रास भी हो गया। मेरा कोई अपना रंग मंच है ही नहीं अतएव मैं किस रंगमंच के दृष्टिकोण से अपने नाटकों की रचना करूँ यह प्रश्न हिन्दी नाट्य लेखकों के समक्ष आता है। इसी प्रकार से हम प्रसाद के नाटकों को तथा भारतेन्दु प्रेमघन आदि के नाटकों को भी कह सकते हैं कि वे अनभिनेय हैं। प्रसाद की भाषा क्लिष्ट है भावगम्भीरता की उसमें पराकाष्ठा है और परम शिक्षित समुदाय के लिए यह अच्छा है। अन्त में प्रसाद जी के ऊपर इतना ही कहना पर्याप्त है कि उनके नाटक हिन्दी साहित्य का अमूल्य निधियाँ हैं। उनका स्थान हिन्दी साहित्य के नाटककारों में विशेष ऊँचा है, अभी तक प्रसाद जी के प्रतिभा के सामने कोई भी हिन्दी का नाटककार नहीं आ सका है, यद्यपि वे एक एतिहास लेखक नाटककार के रूप में हमारे समक्ष प्रधान रूप से आते हैं।

प्रेमचन्द —

प्रेमचन्द जी की साहित्यिक महत्ता एक उपन्यासकार तथा कहानी लेखक के रूप में हमारे समक्ष आती है। चलते हाथ इन्होंने दो एक नाटक भी लिख दिए हैं। इनसे इन्हें कोई नाटककार का स्थान नहीं मिल सकता। आपके चरित्र चित्रण की कला परम उच्च है उसमें कितनी स्वाभाविकता है यह प्रत्येक हिन्दी प्रेमी जानता है। आपके चरित्र परम श्रेष्ठ श्रेणी के होते हैं।

गये जहां इनका राज्य था। उस जाति के लिये वास्तव में यह कोई आश्चर्य की बात न थी जिसमें संगीत तथा नाट्य साहित्य का अभाव था। इस काल में यदि कुछ नाटकों का सूत्रपात हुआ तो उन वीर भारतीयों के कारण जो तत्कालीन यवनों के आधीन न थे।

इस प्रकार से ई० १,००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर और नवीन भाषाओं के प्रादुर्भूत हो जाने पर संस्कृत में नाटकों का लिखना भी एक कठिन काम हो गया। जिस समय प्राकृतों से ग्रामीण भाषाओं का जन्म हुआ और उन में साहित्य भी बनने लगा उस अवस्था में संस्कृत के नाटकों का विषय एक दूसरा ही प्रश्न हो गया था। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि संस्कृत के नाटकों के होते हुये १६ वीं शताब्दी में हिन्दी में नाटको की उत्पत्ति हुई। विद्यापति ठाकुर जो मैथिली भाषा के एक प्रमुख कवि हो गये हैं सर्व प्रथम संस्कृत तथा प्राकृत के प्रयोग से जो उनके समय में नाटक बने थे उनमें मैथिली भाषा के गीतों को स्थान प्रदान किया। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यहीं से भाषाओं का नाटक में प्रयोग होना प्रारम्भ हुआ और यहीं से हमें संस्कृत नाटकों का अन्त मानना होगा।

संस्कृत नाटकों की विशेषता

भारतवर्ष में जहां पर जाति भेद एक प्रधान गवेषणा का विषय है, यदि इसने अपने कारण बहुत सी अच्छी बातों को स्थापित किया है तो बहुत सी इसने त्रुटियां भी हिन्दू समाज में ला दी हैं। जब हम भारतीय नाटकों के प्रश्न को उठाते हैं उस समय पर भी हमें जाति व्यवस्था पर कुछ विचार करना पड़ता है। पश्चिमीय देशों में जब हम एथेन्स का इतिहास पढ़ते हैं तो यह

नाटककार के रूप में देखते हैं। प्रेमचन्द का चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक तथा उच्च कोटि का होता हुआ नाट्यात्मक होता है। हिन्दी वालों का इस कला को इनसे ग्रहण करना चाहिए।

पं० वेचन शर्मा उग्र :—

आप एक उपन्यासकार कहानी लेखक तथा नाटककार के रूप में हिन्दी साहित्य में उतरे हैं। जिस प्रकार से प्रेमचन्द ने कहानियों में सामाजिक कुरीतियों, तथा देश की वास्तविक घटनाओं का चित्रण किया है वैसे ही उग्रजी ने भी अपने नाटकों में सदैव सामाजिक कुरीतियों के ऊपर विशेष ध्यान दिया है। समाज की क्या दशा है। वास्तव में यही आपके लिखने का विषय है।

उग्र जी को हम महात्मा ईसा नामक नाटक से ही एक सफल नाटककार मान लें तो बुरा न होगा। आपका यह नाटक एक उच्च कोटि का नाटक ही नहीं है पर यह एक उन नाटकों में है जिसमें भारतीय नाट्यशास्त्र के ह्रास के होने पर भी अप्रेजियत का आभास मिलता है। इसके अन्दर सुन्दर चित्रित चरित्र हैं। स्वाभाविकता का इनमें अधिक परिचय मिलता है। हमें आपके नाटकों में लौकिक तथा अलौकिक दोनों पात्र मिलते हैं जैसे राक्षस देवियाँ देवता, राक्षसियाँ और साधारण स्त्रियाँ।

आपने नाटकों में अन्नजलवध, तथा महात्मा ईसा लिखे हैं और प्रहसन तथा एकाङ्की नाटकों में भी आपको कुछ सफलता मिली है। आपसे अभी और सुन्दर नाटकों की आशा की जाती है।

३—राजा लक्ष्मन सिंह ।

भारतेन्दु काल—

४—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

५—पं० बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन"

६—प० अम्बिका दत्त व्यास ।

७—पं० प्रताप नारायण मिश्र ।

८—ला० श्रीनिवास दास ।

९—तोता राम ।

१०—बाल कृष्ण भट्ट ।

११—गोकुल चन्द ।

१२—देवकी नन्दन तिवारी ।

१३—शीतला प्रसाद तिवारी ।

१४—राधा कृष्ण दास ।

१५—कुमार लाला खड्ग बहादुर मल्ल ।

१६—पं० दामोदर शास्त्री ।

नाटकों का प्रथम उत्थान सम्वत् १९१३—१९५७

१९ वीं शताब्दी में अंग्रेजो के आने के पश्चात् भारतवर्ष में जब अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार की भावना हुई उसी समय पर अंग्रेजों द्वारा हिन्दी भाषा में (जिस का प्रचलित रूप ब्रजभाषा ही था) गद्य के लिखने की आवश्यकता को लोगों ने समझा। इससे यह कहने में कि हिन्दी भाषा में गद्य के आधुनिक रूप का अंग्रेजों के आने के कारण हुआ कोई झूठ बात न होगी। गद्य के जन्म-दाताओं ने जो "रानी केतकी की कहानी" तथा "प्रेमसागर लिखा इसमें और आधुनिक गद्य की प्रचलित रूप रेखा में

स्थय कुछ कहलाना चाहा है वहाँ पर आपकी भाषा कुछ क्लिष्टता के दृष्टिकोण से युक्त न हो वही गंभीर हो जाती है। वरमाला में तो प्रधानतया आपकी भाषा परम् सराहनीय है जैसे—"किन्तु हाय ! कौन कहता है कि प्राणधार आवेगा (अचानक आम की आड से कोयल कूकती है) कौन ! कोकिल तू कहती है प्राणधार आयेंगे ! तू मूढ़ कहती है, यह तेरी भ्रम है" पृष्ठ ५८। इस विषय में इतना कहना पर्याप्त होगा कि आपकी भाषा नाटक के लिए परम उपयोगी है। यही सब साधारण की भाषा कही जा सकती है।

नाटक के पात्रों के चरित्र चित्रण में पंत जी को परम कुशलता नहीं प्राप्त है। पर यह मानना पड़ेगा कि उनका चरित्र चित्रण शिथिल होते हुए भी निन्दनीय नहीं है। शेक्सपियर ने लेडी मेकबथ का चरित्र १२० लाइनों के भीतर ही चित्रित कर दिया पर जब हम आपके नाटक वरमाला में नायक तथा नायिका के चरित्र को देखते हैं तब उनके कार्य की शिथिल गति आती नहीं है। अस्वाभाविकता का प्रवेश आपके चरित्रों में नहीं है क्योंकि आपके चरित्र मानव चरित्र के रूप में हमारे सामने आते हैं। समय समय पर जब कभी किसी को किसी की आवश्यकता पड़ी है, वह उस समय पर विभिन्न रहता हुआ भी अपने मनुष्यत्व के कार्यों को नहीं भूला है।

मैंने अभी यह लिखा है कि आपके चरित्र शिथिल होते हैं इसका और ठीक ज्ञान आपको नायिका वैशालिनी के चरित्र के देखने से स्पष्ट हो जायगा। वैशालिनी के चरित्र का प्रथम चित्र वरमाला गूँथते समय मिलता है—फिर उसका जो चित्र

नाम की अपनी पुस्तक में लिखते हैं " हिन्दी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रन्थ की सृष्टि हुए पच्चीस वर्ष से विशेष नहीं हुए। यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदान्त विषयक भाषा ग्रन्थ समयसार नाटक, ब्रजवासीदास प्रभृति के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के भाषानुवाद, नाटक नाम से अभिहित हैं किन्तु इन सभों की रचना काव्य की भाँति है अर्थात् नाटक रीत्यानुसार पात्र प्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषा कवि कुल मुकुट माणिक्य देव कवि का 'देव माया प्रपंच' नाटक और श्री महाराज काशीराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्री महाराज विश्वनाथ सिंह रीवां का आनन्द रघुनंदन नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमो का प्रतिपालन इनमें नहीं है और छन्द प्रधान ग्रन्थ है। विशुद्ध नाटक रीति से पात्र प्रवेशादि नियम रक्षणद्वार भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है। वह नाटक 'नहुष' नाटक है। " हिन्दी भाषा में दूसरा ग्रन्थ वास्तविक नाटककार राजा लक्ष्मणसिंह का शकुन्तला नाटक है। भाषा के माधुर्य आदि गुणों से यह नाटक उत्तम ग्रन्थों की गिन्ती में है। तीसरा नाटक हमारा 'विद्या सुन्दर' है। चौथे स्थान में हमारे मित्रलाल श्री निवासदास का 'तप्तासंवरण, पाँचवां हमारा' वैदिक हिंसा, षष्ट प्रिय मित्र बाबू तोताराम का 'केटोकृतान्त' और फिरती दो चार कृतविद्य लेखको के लिखे हुए अनेक हिन्दी नाटक हैं।"

इस प्रकार पाठकों को नाटकों के प्रारम्भिक काल का ज्ञान हो गया होगा अब हम भारतेन्दुकालीन नाटककारो को अलग अलग देखेंगे।

नाटकों की एक एक विशेषता यह है कि न साहित्यिक होते हुए, परम अभिनेय हैं।

प० माखन लाल चतुर्वेदी —

आपकी प्रतिमा एक बहुमुखी प्रतिमा है। आप जिस प्रकार एक अच्छे कवि हैं वैसे ही आप एक कुशल नाटककार भी हैं। यद्यपि भारतीय रंगमंच का यहाँ पूर्ण अभाव है पर नाटक लेखकों का यह मानना पड़ता है कि नाटक को अभिनय बनाना चाहिये। यह सममन म कि किस विचार से हम यह कह सकते हैं कि अमुक नाटक अभिनेय है, और अमुक नहीं कठिन समस्या आती है तिसपर, भा सरलता, कम पात्रों का होना, समय का विचार सद्‌भाषा के प्रयोग आदि के गुण जिस लेखक में होते हैं वह एक अच्छा लेखक हो जाता है। इसी दृष्टि कोण से हम को यह मानना पड़ता है कि आपके नाटक अभि नय के योग्य हैं। कृष्णार्जुन युद्ध आप का एक प्रसिद्ध नाटक है इसी प्रकार आपने नाटक लिखे हैं।

आपका चरित्र चित्रण स्वाभाविक होता हुआ भी कहीं कहीं पर अस्वाभाविक हो जाता है पर यह इतना कम होता है कि नहीं के बराबर है। भाषा आपकी सर्वसाधारण के प्रयोग की कही जा सकती है। भाषा में प्रसाद गुण का ही आभास मिलता है। भाषा का पात्रों से आपने उचित प्रयोग कराया है। भाषा के सुन्दर होने से आपके छोटे छोटे नाटक भी अच्छे हो जाते हैं। आपकी प्रतिमा नाटकों म पूर्ण रूप से व्याप्त नहीं दिखाई पड़ती, पर यह मानना पड़ेगा कि आप एक प्रचण्ड कलाकार हैं।

विचार करके लोगों ने नाटक लिखना प्रारम्भ किया। पर इस कार्य का झंड़ा हमारे भारतेन्दु बाबू के ही हाथों से सर्व प्रथम साहित्य महल पर फहराया गया।

स्वतंत्र रचनायें

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने सम्वत् १९३० में वैदिक 'हिंसा हिंसा न भवति' नामक प्रहसन लिखा और क्रमशः स्वतंत्र नाटकों का भी लिखना प्रारम्भ किया। भारतेन्दु बाबू हिन्दी में भाषा के सुधारक ही न हुये बरञ्च उन्होंने गद्य,पद्य, नाटक इन तीनों साहित्य के अंगों के ऊपर ध्यान दिया। आपने अपने अल्पकालीन जीवन में जितना साहित्य का मसाला छोड रखा है उतना सर्व साधारण के मान का नहीं है। वे एक महान साहित्यिक पुरुष थे उनकी प्रतिभा महान थी। भारतेन्दु जी ने अपनी नाटक नाम की पुस्तक में लिखा है कि हिन्दी के सर्व प्रथम नाटक जो कि ब्रजभाषा में लिखे हैं वे ये हैं—सर्व प्रथम महाराज विश्वनाथ सिंह का "आनन्द रघुनन्दन नाटक" और द्वितीय नहुष नाटक जिसको बाबू गोपाल चन्द्र जी ने लिखा है। पर इनको हम नाटक नहीं मान सकते क्योंकि नाटक के तमाम उपकरण यहां पर हमें नहीं मिलते। नाटक में आप कहे कि कथोपकथन, ही एक प्रधान वस्तु है तब उसे नाटक मानने में लोग कम तत्पर होंगे। अस्तु उपरोक्त नाटकों को हम यह कहेंगे कि नाट्य कला के रूप का अंकुर उसमें दिखाई पड़ता है और यह ज्ञात होता है कि नाटक के नियमों का कुछ का पालन उसमें हुआ है। पर हां इतना सब को मानना पड़ेगा कि हिन्दी नाटकों का आदि रूप यही है जो कि समयानुकूल बढ़ते बढ़ते इस रूप में पहुंचा है।'

है। आपके नाटक आधुनिकता से ओतप्रोत होते रहते हैं। संन्यासी आपका एक आधुनिक समय का जीता जागता चित्र है। पात्रों के खोज में न आपने देवताओं को बुलाया है न राक्षसों को वरञ्च आपके पात्र प्रतिदिन संघर्ष में आने वाले व्यक्ति हैं—जैसे कालेज के प्रोफेसर और कालेज की बालिका।

संन्यासी, अशोक, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, सिन्दूर की होली आपके परम सुन्दर नाटक हैं। अशोक में यदि आप कुछ असफल हुए हैं तो औरों में आप सफल भी हुए हैं और उसमें जो अभिनय का योग नहीं दिया गया है वह उतना कथनीय नहीं है। अन्त में इस विषय के अन्त के लिए हम यह कह दें तो कुछ गलत न होगा कि आपको ऐतिहासिक नाटक में अधिक सफलता नहीं मिली है। पर सामाजिक नाटकों में आपका एक प्रमुख स्थान है।

आपके नाटकों की भाषा, प्रतिदिन की बोलचाल वाली भाषा है। संस्कृत नाट्यशास्त्र से और आपके नाटकों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आपने अपने नाटक लेखन कौशल को आधुनिक प्रचलित नाट्य प्रणाली के अनुसार बना रखा है। हाँ उन अंगों का तो कोई भी नाटककार अवहेलना नहीं कर सकता जिनके बिना नाटक बन ही नहीं सकता जैसे रसनिरूपण चरित्र चित्रण, कथोपकथन इत्यादि। मिश्र जी ने अपने नाटकों में सुखान्त तथा दुखान्त दोनों प्रकार के नाटकों का योग दिया है। भाषा आपकी शिथिल होती हुई नहीं मिलती है और भाषा के अन्तर्गत एक ओज और तेज का पूर्ण आभास है।

से विदित हो जायगा कि इसके मौलिक लेखक का प्रभाव कवि पर कितना पड़ा है, या भारतेन्दु ने इस नाटक को क्या रूप दिया है। इसके अन्तर्गत हम को मिलता है कि कवि अपनी भाषा के अतिरिक्त इसमें और कोई परिवर्तन नहीं करता। पर यह अवश्य मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु ने इसमें साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है।

"कौन है सीस पर चन्द्र कला, कहा या को है नाम यही त्रिपुरारी।"
हाँ यहि नाम है भूलि गई किमि, जानत हूँ तुम प्रान पियारी।
नारिहि पूछत चन्द्रहि नाहि, कहै विजया जदि चन्द्र लबारी।
यो गिरजै छलिगंग छिपावत ईस हरौ सब पीर तुम्हारी।"

यदि गद्य को देखिए तो इनकी भाषा एक सरल भाषा के समान होते हुए कहीं कहीं कवि कल्पना से अति प्रभावित होती दिखाई पड़ती है। भाषा में अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग पूर्ण रूप से लक्षित होता है। आपकी भाषा की शैली भावावेश तथा तथ्यनिरूपण की होती है।

भावावेश की भाषा का प्रयोग आपके नाटकों में मिलता है। इसकी विलक्षणता इतनी ही है, कि इसके अन्तर्गत छोटे छोटे वाक्य, सरस पदावलियों से युक्त होते हैं। जैसे चन्द्रावली नाटिका मे "देखो दुष्ट का, मेरा तो हाथ छुड़ा कर भाग गया अब न जानें कहाँ खड़ा वंशी बजा रहा है। अरे छलिया कहाँ छिपा है। बोल बोल कि जीते जो न बोलेगा (कुछ ठहर कर) मत बोल मैं आप पता लगा लूँगी (वन के वृक्षों से पूँछती है)। अरे वृक्षो बताओ मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है।"

पर इसके विपरीत जब हम तथ्यनिरूपण वाली भारतेन्दु की

मन म सकल्प कर लेती है, तो बस उसी अपने आराध्यदेव के ऊपर अपना जीवन बिता देती है। मृत्यु के दिन म उसका अपने राजनीकान्त से सिन्दूरदान उस समय करना जब वह मृत्यु शैया पर बेहोश था यह बताता है कि वह कितनी दृढ़ प्रतिज्ञ तथा उच्चादर्श की नारी है। इसका चरित्र अकित करते समय लेखक शकुन्तला के चरित्र को सामने रखे था या शेक्सपियर के मिरन्डा का चित्र उसके समक्ष था क्योंकि इसका प्रेमप्रथम दृष्टि का प्रेम है। जिसे अंग्रेजी में Love at first sight कहते हैं।

अन्त म म मिश्रजी के विषय में यह कहना चाहता हूँ कि आप समय को देख कर रचना करने वाले लेखक हैं। आप के नाटकों म न तो पौराणिक कथायें हैं और न प्राचीन आदर्श। आपके नाटक पूर्ण कला युक्त तथा अपने ढग के निराले हैं। आप हिन्दी साहित्य में एक प्रधान स्थान रखते हैं क्योंकि आप के नाटकों को देख कर तथा पढ़ कर दोनों प्रकार से मनुष्य लाभ उठा सकता है। अर्थात् आपके नाटक यदि अभिनय किये जायें तो आपके नाटक में पूर्ण सफलता की आशा है।

हम आशा है कि मिश्रजी पर हम अलग किसी पुस्तक में पूर्ण ध्यान देकर विस्तार में लिखेंगे।

प० जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' —

कवि के रूप मे मिलिन्द जी प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष उपस्थित हैं, कविता की सरसता, और भाव सौन्दर्य आपकी रचनाओं में दिखाई पड़ती है। पर हम जब आपको एक नाटककार के रूप में देखते हैं तब भी आपको हम एक सरस कवि रूप ही में पाते हैं। "प्रताप प्रतिज्ञा" एक परम प्रचलित कथानक को

इस प्रकार से भारतेन्दु जी के चरित्रो को हम परम स्वाभाविक तथा सार्थक पाते हैं। आपका चरित्र चित्रण एक उच्चकोटि का होता है।

दूसरा प्रश्न उठता है आप के कथोपकथन, गीत, तथा नाटक रचना प्रणाली पर। कथोपकथन तथा गीत इन दोनों का सम्बन्ध बड़ा ही निकट तम है। कथोपकथन की आपमें कोई विशेष कला नहीं है। आपके पात्र सीधे सादे रूप में बातचीत किया करते हैं। गीतों का प्रयोग आप के नाटकों में अधिक नहीं मिलता। कवित्त, सवैया तथा दोहों को अधिक हम आपके नाटकों में पाते हैं।

यहां पर यह बात विचारणीय है कि आप की नाटक रचना शैली, क्या परिशुद्ध, भारतीय है, या अँग्रेज़ी से प्रभावित है इस स्थान पर यह मानना पड़ेगा कि संस्कृत आचार्यों को ध्यान में रखे हुए आपने बंगला के प्रभाव से अपने नाटकों को बनाया है पर, प्राचीनता का पूर्ण छाप आपके नाटकों पर है।

अन्त में भारतेन्दु जी के विषय मे इतना कहकर कि आप का स्थान कहां पर है इनके विषय को बन्द करूँगा। मेरे विचार मे तो भारतेन्दु बाबू ने उन्नीसवीं शताब्दी में वही कार्य किया जो कि शेक्सपियर ने अंग्रेज़ी भाषा के लिए इसने समय में किया पर दोनो के दृष्टि कोण में अंतर था। पर हिन्दी नाटकों में भारतेन्दु शेक्सपियर के स्थान को ग्रहण करते हैं और प्रसाद बरनाडशा का।

उपाध्याय पं० बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन" का नाम हिन्दी साहित्य के प्रधान महान् कलाकारों में से है। उपाध्याय

प्रताप में वास्तविक प्रताप के सब गुण सनिहित है। भामाशाह एक महान् आत्मा है, उसका स्वार्थ त्याग इतिहास में तो अमर ही है पर उसके चरित्र के लिखने वालों के लिए भी वह परम सहायक है। प्रताप का यह कहना "जा, जा ! यवनवादी ! देश द्रोही ! मुगलों की चरण रज मस्तक पर लगा कर राजस्थान के तिलक मेवाड़ को भय दिखाने आया है" मानसिंह के लिए कितना उत्तम उत्तर है।

अन्त में मिलिन्दजी की प्रतिमा के ऊपर इतना कहना पर्याप्त होगा कि आप प्रतिमा से युक्त हैं और आपके नाटक जीवन के सजीव चित्र है।

बाबू मैथिली शरण गुप्त :—

आप आधुनिक काल के कवि सम्राट तो हैं ही पर आपने दो नाटक भी लिखे हैं। यशोधरा पुस्तक म भी आपने नाटकी यता लाना चाहा है। यह प्रत्यक्ष ही मालूम होता है।

गुप्त जी के अनघ तथा चन्द्रहास ही प्रसिद्ध नाटक हैं। यदि यहाँ पर मैं यह कहूँ कि इस काल म आपही ने पद्यात्मकता को नाटक के अन्तगत प्रदर्शित किया तो असत्य न होगा। जैसा आप लोगों को मालूम है आप एक कवि हृदय होते हुए कवि सम्राट भी हैं अतएव नाटक में भी आप कितनी सरसता ला सकते हैं यह अनुमान नहीं किया जा सकता।

अनघ आपका एक उच्च कोटिका नाटक है अनघ का पात्र मघ एक आदर्श पुरुष है।

इसका कथानक भी बड़ा मनोरञ्जक है। इसमे कवि ने

"मार मार, मार, मार, काट, काट, काट,
लूट, लूट, लूट, लूट, हैं य कौमें काफ़िरान।
दूर जल्द करो इनका बस अब नाम ओ निशान,
होय जिससे कि बहादुर ही शाह सुलतान।

प्रेमघन जी का चरित्रचित्रण परम स्वाभाविक है आपने चरित्र चित्रण पर इतना ध्यान दिया है कि नाटकों मे वस्त्र तक के भी नोट दे दिए हैं। राजीवलोचन का चरित्र वारंगनारहस्य में एक परमसजीव चित्र है परम आरामतलब, प्राचीन ऐश व आराम करने में मस्त, द्रव्य कौड़ी की तरह फेंकने वाला राजीव ऐयाशी में फंसा तत्कालीन ऐश्वर्यशाली धनिकों का चरित्र है। भारत सौभाग्य में लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती का प्रस्थान का चित्र उनके चरित्र चित्रण कला को बड़ा ऊँचा उठा देता है। प्रहसनों में भी चरित्रों को आपने खूब विकसित किया है।

अन्त में मैं आप के विषय मे और समझता हूँ कि भारतेन्दु जी के बाद तत्कालीन नाटककारो में प्रेमघन का ही नाम इतिहास में आता है। लोगों का यह मत है कि आपके नाटक भारत सौभाग्य में इतने अधिक पात्र आ गये हैं कि उसका अभिनय असम्भव है और वास्तव में यह त्रुटि है पर प्रेमघन जी ने नटी, सूत्रधार को भी पात्रों में रख दिया है और इसी प्रकार से कई ऐसे ऐसे पात्र आ गए हैं जिनका पात्रों में नाम न आना चाहिए पर वे तो उसके परे हैं। यदि इस दृष्टिकोण से उनके इस नाटक को देखा जाय तो पात्रों की संख्या कम हो जाती है और नाटक भी अभिनय के युक्त हो जाता है।

जी० पी श्री वास्तव —

हास्यरस के एक मेव सजीव चित्र आप हिन्दी भाषा के अच्छे लेखकों में हैं। लम्बी दाढ़ी को यदि आप घसीटें तो न मालूम कितने बाल उसमें मिलेंगे—बस यही आपका दशा है हास्यरस के कितने ही नाटक आपने लिखे हैं इनमें अधिकतर अनुवादित अँग्रेजी नाटकों का आधार है। आपने अपने पात्रों का बड़ा ही कुशल तथा मसखरा बना रखा है।

आप संस्कृत नाट्यशास्त्र से बिलकुल ही दूर भगे महाशयों में से हैं। पर पश्चात्य साहित्य का आप पर पूरा प्रभाव पड़ा है। आपके नाटक अब सिनेमा के चित्रपटों पर खेले जाने वाले भी हैं। आप एक आधुनिक मस्त नाटक के लेखक हैं।

भाषा आपकी उर्दू मिश्रित हिन्दी है, और उसे हम अधिक आदर नहीं द सकते क्योंकि भाषा में मुहावरे दानी ता है पर इसके हिन्दुस्तानी हो जाने में हिन्दी साहित्य का पतन हो है। भाषा जो पात्र प्रयोग करते हैं वह परम स्वाभाविक होता है। आपके पात्र वृद्ध, बच्चे तथा सब हो सकते हैं चरित्र चित्रण भी आपका सराहनीय नहीं है। पर आप एक मनोवैज्ञानिक नाट्य लेखक हैं।

सुदर्शन जी —

आप एक उच्च कोटि के एकाङ्की नाटक लेखक हैं। आपने अनना, चन्द्रगुप्त आदि एकाङ्की नाटक लिखे हैं। आपकी प्रतिभा इस ओर अधिक झुकी है आशा है कि आप इसमें और उन्नति करेंगे।

भाषा आपकी परम सुन्दर है। आपकी भाषा में हम

विकास हिन्दी में हो रहा था इससे आप को इस समय की रचनाओं में शकुन्तला का आभास नहीं मिल सकता।

लाला श्री निवास दास भारतेन्दु के समकालीन लेखकों में से हैं नाटकों की रचना आपने विशेष कौतुक से किया है। आप के नाटकों में ऐतिहासिकत्व का पूर्ण भास है। आप की रचनाये इस प्रकार हैं संयोगतास्वयम्वर, रणधीरप्रेममोहिनी, तप्त सवरण।

भाषा तो आप की एक परम प्रतिदिन बोली जाने वाली है उसमें न तो नाटकत्व का पूर्णआभास है न उसमें एक महान कला है पर वह साधारण कोटि में रखी जाने वाली है।

नाटकीय विषयों में भी आपने प्राचीन परम्परा का ही ध्यान रक्खा है। संयोगिता स्वयम्वर में अनेक त्रुटियां आगई हैं और प्रेमघन जी की समालोचना ने तो उसमें और महान भूलें दिखा डाली हैं। पर हम तो आप की नाट्य कला को वैसी ही समझते हैं जैसे इंशाअला के गद्य को।

आप का प्रयास सफल नहीं पर प्रारम्भिक होने के कारण सराहनीय तथा आदरणीय है।

बा० तोता राम—आपका नाम नाटक लेखकों में कोई विशेष आदरणीय नहीं है क्योंकि आपने केटोकृतान्त नाटक लिखा है जिसको अनुवाद मानना पड़ेगा। प्रहसनों को भी आपने अपने नाट्य रचना के स्थान नहीं दिया है।

पं० बाल कृष्ण भट्ट—आपने पदमावती, शर्मिष्ठा, चन्द्रसेन नामक नाटक लिखे हैं। अपकी भाषा परम साहित्यिक है। आपने अपने नाटकों में भाषा के साथ साथ सुन्दर चरित्र चित्रण भी

जिसकी सास में हवा के स्थान में वेदना है, उसी के समीप रहकर मैं उसकी सेवा करना चाहता हूँ। अब चपक दुखी नहीं है। उसकी करुणा जनक परिस्थिति अब निकल गई। अब वह सुखी है।" पृथ्वीराज की आँखें पृष्ठ १०

एक दूसरा रूप जो आपकी भाषा में दिखाई पड़ता है वह है "यही मेरा जीवन है। दूसरों की वेदना मे अपने जीवन में रखकर उसे सुखी कर देना चाहता हूँ। लोग कहते हैं, मेरा जीवन एक करुण गान है, पर उस करुण गान का सबसे मीठा स्वर है यह चपक। इसे भी अब दूर कर किसी दूसरे मीठे स्वर की खोज करूँगा।" परन्तु इस भाषा म भी अस्पष्टता नहीं आने पाई है भाषा परम संयमित है। कल्पना के क्षेत्र में भाषा ने इतना विहार नहीं किया है कि अर्थ का अनर्थ हो जाय। आपकी भाषा अभिनय के युक्त पर मनोवैज्ञानिक है।

शैली के ऊपर ध्यान देते समय यह हमें ध्यान रखना चाहिए कि वर्मा जी एक कवि हैं और कविता इनकी सहचरी है। आपने अपने नाटकों म नवीन पश्चिमीय नाटकों की शैली का अनुकरण किया है। कथानक का आरम्भ और उसका अन्त तक सरल करना एक सफल नाटककार का प्रथम कर्तव्य है। वर्मा जी के नाटक परम सफलपूर्ण अधिकतर प्रशान्त नाटक है। करुण रस का चित्र आपके नाटकों में अवश्य मिलता है। आपके नाटकों के कथानक का प्रारम्भ भी कहीं कहीं चरम सीमा (Climax) से ही होता है जैसे दस मिनट—इसमें बलदेव अपने बहन को दुर्विचार से देखने वाले युवक का खून करके आता है और फिर इसके बाद कथा का प्रारम्भ होता है। यह एक नवीनता है।

कुमार लाल खड्ग बहादुर मल्ल युवराज मझौली राज :—

रूपक

१ महारास

पं० दमोदर शास्त्री :—

रूपक

१ रामलीला ७ कांड
२ बाल खेल
३ राधा माधव

इतने लेखकों के बाद भारतेन्दु काल समाप्त होता है। भारतेन्दु काल के मैंने सब नाटककारो की व्याख्या इसलिए न की, कि उनमें कोई विशेष बात नहीं है, भारतेन्दु और प्रेमघन इन दोनो के ऊपर सूक्ष्म विचार हो गया है इससे विद्यार्थियो को इस काल के नाटककारों के क्रमिक विकास का पूर्ण आभास मिल गया है। बाबू राधाकृष्ण के बाद कोई भी उपरोक्त महानुभावों के सदृश नाटकार नहीं हुआ और इसी बीच में बा० राम कृष्ण वर्मा ने बंगला के नाटकों का अनुवाद प्रारम्भ किया। इस प्रकार से फिर से अनुवाद के होने का परिणाम यह हुआ कि हिन्दी में नाटकों का विकास होने लगा। वीर नारी, पद्मावती, कृष्ण कुमारी आदि नाटक उसी काल के लिखे हैं पर इनका वह स्थान तो नहीं है जो पहले के अनुवादित नाटकों का है। दुख की बात यह हुई कि यह अनुवाद की प्रणाली शीघ्र ही अस्त हो गई पर इसी के साथ उपन्यासों की जो अनुवाद की परम्परा थी वह चलती रही। नाटकों के बंद हो जाने का

इस काल में गहमरी की प्रतिभा एक प्रभावशाली थी। आप ने अपने नाटकों में प्राचीन परिपाटी को रखा है। नाटकों में नान्दी, सूत्रधार इत्यादि से युक्त कर आप एक प्राचीन लेखक के सामने हमारे समाने आते हैं। आप की नाट्य शैली एकाङ्गी नहीं है। आप नाट्य शास्त्र के पूर्ण आचार्य थे। बनबीर नाटक आप का एक भयानक, रौद्र, वीर, हास्य तथा करुण रस के सामंजस्य से बना हुआ है। लेखक को साहित्य का पूर्ण ज्ञान था यह इस नाटक से पूर्णरूप से पता चलता है।

आपने इसके अन्तर्गत भाषा को बड़ा ही चलता रूप दिया है। "ओफ ! संसार में अवस्था ही मूल वस्तु है, देखते हैं। जब जैसी दशा आती है तब आदमी की वैसी ही गति हो जाती है।" यह बनबीर कहता है। अंक दूसरा—दृश्य पहला।

चरित्रों का चित्रण भी आप ने अच्छा किया है। आपके चरित्रों में सजीवता है और कृत्रिमता का समावेश नहीं है।

बा० सीताराम बी० ए० जी का स्वतंत्र रचनाकारों में स्थान न आकर अनुवादकों मे आता है। आपने संस्कृत के कई नाटको का अनुवाद किया है मृच्छकटिक, महावीरचरित, उत्तररामचरित, मालती माधव इत्यादि नाटको का अनुवाद किया है। आप को अनुवादों में पूर्ण सफलता प्राप्त है। आप के अनुवाद हिन्दी साहित्य के सुन्दर अनुवाद हैं। यह सब को मानना पड़ेगा। आप खड़ी बोली के प्रधान विद्वानों मे से होते हुए ब्रजभाषा के भी पंडित थे। इस प्रकार अनुवादक के दृष्टि कोण से हम आप को एक सफल कलाकार मानते हैं।

पं० सत्य नारायण कविरत्न की भी गणना अनुवादकों में ही

विपरीत जब हम इस आधुनिक काल को देखते हैं तो नाटकों की सरिता बहती हुई मिलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि तृतीय उत्थान या आधुनिक काल मे नाटकों को पूर्ण विकसित रूप हमारे समक्ष आता है।

पर अनुवाद का कार्य जो इस समय मे हुआ उसका कम साहित्य में आदर नहीं है। पं० रूपनारायण जी की भाषा जो अनुवादों में है परम सुन्दर तथा स्वाभाविक है। आप ही एक इस काल में बढे हुए अच्छे अनुवादक हुए नाट्य साहित्य आप के अमिट प्रभाव से प्रभावित है।

एकादश अध्याय

हिन्दी के तृतीय उत्थान के नाटककार

बा० जयशंकर प्रसाद
,, प्रेमचन्द
पं० बेचन शर्मा उग्र
,, गोविन्द वल्लभपंत
,, माखनलाल चतुर्वेदी
,, बद्रीनाथ भट्ट
,, लक्ष्मी नारायण मिश्र
,, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द
बा० मैथिली शरण गुप्त
श्री जी० पी० श्रीवास्तव
श्री सुदर्शन जी
श्री रामकुमार वर्मा

सुन्दर झाँकी मिलती है। प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, विशाख, जनमेजय, नागयज्ञ, कामना, विक्रमादित्य, राज श्री, एक घूँट, करुणालय प्रायश्चित्त और सज्जन इत्यादि नाटकों की रचना की है। जिस प्रकार से मनुष्य के विचारों में परिवर्तन हुआ करता है उसी प्रकार से उसकी रचनाओं में भी परिवर्तन होते हैं। प्रसाद जी के नाटकों के क्षेत्र के अन्तर्गत उनकी प्रारम्भिक रचनाओ से तथा बाद की रचनाओ में बड़ा अंतर है।

विशाख उनका प्रथम नाटक है। इसके अन्तर्गत यह ज्ञात होता है कि कवि ने अपना कुछ आदर्श बना रखा है। और अपनी प्रतिभा से उस आदर्श को नाटक के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न करता है। विशाख के शैली में तथा करुणालय जो कि एक गीति नाट्य है बहुत अन्तर है। कामना एक रूपक Allegory के रूप में हमारे समक्ष दिखाई पड़ता है और एक घूँट में Symobolism अर्थात् संकेतवाद की छटा है।

प्रसाद जी की रचनाओ के देखने से यह ज्ञात होता है कि 'सज्जन' उनका सबसे प्रथम नाटक है। यह एक एकाङ्की नाटक है। नान्दी का सर्व प्रथम आना और उसके उपरान्त सूत्रधार का अपनी स्त्री से नाट्याभिनय का प्रस्ताव करना इसके प्राचीन होने का प्रमाण है।

कथोपकथन के अन्तर्गत हमे प्राचीन प्रणाली का पूर्ण आभास मिलता है—पात्रो का अपनी उक्तियों के हेतु पद्य का इसमें अधिक प्रयोग किया है। प्रकृति वर्णन भी इसमें संस्कृत नाटकों के सदृश हुआ है।

इस विषय के उपरान्त प्रसाद के नाटकों की वस्तु कितनी जटिल होती है इसका अनुमान करना कठिन है। विशाख, जन्मेजय, नागयज्ञ को छोड़ शेष तीनों ऐतिहासिक नाटकों की वस्तु बड़ी जटिल है जिसका कारण प्रधान प्लाट के अन्दर अनेक उपप्लाटों का समावेश होना है। राजनैतिक परिस्थितियाँ इसके लिए हमें बाध्य करती हैं। प्रसाद की नाट्य शैली भी एक नूतनता से युक्त होती हुई प्राचीन है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में न तो द्विजेन्द्रलाल राय के सदृश विदूषक को ही रखा और न साधारण नाटककारों के समान निकृष्ट श्रेणी का परिहास ही कराया है। प्रसाद जी ने अपने विदूषकों को एक संयमित परिधि के अन्तर्गत उच्चकोटि के परिहास का परिचायक बना रखा है। चरित्र चित्रण का ध्यान आपको सदैव रहा है और आप एक अच्छे मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण करने वाले कलाकार हैं। वस्तु की व्याख्या में वे ऐसे सुअवसरों को लाते हैं कि वे बड़े ही उपयुक्त होते हैं। इस स्थान पर हम यहीं तक इसके विषय में लिख आगे नूतन शीर्षक के अन्तर्गत इसका वर्णन करेंगे।

चरित्र चित्रण

नाटक स्वयं एक सामूहिक चरित्रों की एकत्रित गाथा है। चरित्र चित्रण का स्थान नाटक में एक विशेष स्थान रखता है। प्रसाद जी के नाटकों में हम चरित्रों का सहजात अर्थात् स्वाभाविक तथा परिस्थितिजन्य इन दो महान् आदर्शों के अन्तर्गत पाते हैं। परिस्थितियों से ही साधारणतया चरित्र बनता है

लेना पड़ता है। पुरुषों का चरित्र चित्रण इनका बिलकुल सामयिक परिस्थितियो के अनुसार होता है। यह देखने में आता है कि स्त्रियो के चरित्र मे आपकी अधिक लगन नहीं है। उदासीनता की भावना उनके चरित्र चित्रण में आ जाती है, स्कन्दगुप्त कितना निःस्वार्थी था पर वह भी उदासीन हुआ पाया जाता है। स्कन्दगुप्त मे कमला का चरित्र कितना उज्वल है। भर्टाक के विद्रोही होने पर माता उसे कहती है "भर्टाक तेरी माँ को एक ही आशा थी, कि पुत्र देश का सेवक होगा, म्लेच्छो से पद दलित भारत भूमि का उद्धार करके मेरा कलङ्क धो डालेगा, मेरा सिर ऊँचा होगा" यह एक देश प्रेमिका माता के वचन हैं। इसका चरित्र कितना उज्वल है। जिस समय सर्वनाग महादेवी के वध के फेर मे है उस समय उसकी स्त्री रामा कहती है "रक्त के पिपासु। क्रूर कर्म्मा मनुष्य? कृतघ्नता की कीच का कीड़ा। नर्क की दुर्गन्ध? तेरी इच्छा कदापि पूर्ण न होने दूँगी।" इन वचनो से कमला का आदर्श नष्ट हो जाता है। अपने पुरुष के प्रति ये शब्द एक आर्य भार्या को शोभित नहीं होते, इस प्रकार से प्रसाद ने चरित्रो मे असावधानी भी की है। सब से बुरी बात जो इनके नाटको मे मिलती है वह है—छूरा मार कर आत्म-हत्या कर लेना अधिकतर यह स्कन्दगुप्त में मिलता है बड़ा अस्वाभाविक है। इस प्रकार मे प्रसाद ने अस्वाभाविकता को आश्रय दिया है।

कथोपकथन

कथोपकथन का व्यवहारानुकूल, भावव्यञ्जक और चुस्त आवश्यक है। इसका प्रधान कार्य कथा वस्तु

समझ पड़ता है और मनोवांछित दृश्यों से नाटक की सार्थकता ज्ञात होती है।

प्रसाद ने अपने नाटकों मे संगीत को छायावादी बना कर अधिकतर दुरूह कर दिया है और साथ ही साथ नृत्य का अधिक संकेत नहीं दे रखा है। दृश्यों के बारे में हम प्रसाद के दृश्यों को दो प्रमुख रूपों में विभाजित किया है—प्रथम पथ और दूसरा प्रकोष्ठ। राजकीय पात्र अधिकतर प्रकोष्ठ पर दिखाए जाते हैं। राजनीति के कारण व्याकुल साधारण पात्र पथ पर मिलते हैं। पथ तथा प्रकोष्ठ के अतिरिक्त वन और उपवन की छटा दिखाई जाती है। स्कन्दगुप्त में दृश्य की वैचित्रता और नवीनता अधिक है। अलौकिक घटनाओं का भी समावेश होता है, जिन्हें बीसवीं सदी के लोग झूठ भी मान सकते हैं—जैसे रत्नगृह का एकाएक मिलना।

नाटक और अभिनय

जिसे देखिए यही कहता पाइयेगा, कि प्रसाद के नाटक अभिनय के योग्य नहीं हैं, यदि शेक्सपियर के नाटकों को देखा जाय तो भी यह पता चलता है कि उसके भी कुछ नाटक अभिनय के युक्त नहीं हैं। उसका उद्देश नाटकों को अपने कम्पनी के लिए लिखना था। Hamlet हैमलेट King lear किंगलियर को अंग्रेज़ी के विद्वान चार्लसल्याम्ब ने अनभिनेय ठहरा दिया था। अभिनय का वास्तविक तात्पर्य है कि नाटकों का अभिनय यदा कदा न करके एक प्रमुख कम्पनी द्वारा किया जावे, जिसका कार्य मनोविनोदार्थ नाटकों का अभिनय करना ही हो।

भाषा में सरलता तथा मुहावरे दानी का प्रचुर प्रयोग हिन्दी में केवल प्रेमचन्द जी ही मे मिलता है, मुसलमानों से उर्दू बोलवाना तथा अंग्रेजों से गोराशाही अंग्रेज़ी बुलवाना आप की एक विशेषता है।

प्रेमचन्द का कर्वला एक दृश्य काव्य होकर केवल पाठ्य काव्य ही रह गया है। कर्वला एक ऐतिहासिक कथानक के ऊपर निर्धारित है। यह कथा प्रेमचन्द जी के शब्दों में "हिन्दू इतिहास में रामायण और महाभारत ऐसी ही घटनायें हैं जैसी मुसलिम इतिहास में कर्वला के संग्राम की" अर्थात् यह एक युद्ध भूमि का स्थान है। इसमें ऐतिहासिकता की छाप तो है ही पर साथ साथ यह धार्मिक भी है, लेखक ने ऐतिहासिक घटनाओं पर विशेष ध्यान दिया है और उसका फल यह हुआ है कि उसे कल्पना का स्थान बहुत कम प्राप्त हुआ है। स्त्रियों का पार्ट इस ड्रामा में बहुत कम मिलेगा, पर जैनब, सफीना, कमर इत्यादि स्त्री पात्र भी हैं। इससे यह कोई नहीं कह सकता कि यह नाटक स्त्री पात्रों से युक्त नहीं है।

लेखन शैली भारतीय बिलकुल नहीं है। यह अंग्रेज़ी नाटको में ट्रेजिडी (दुखान्त) नाटको का हिन्दी मे एक उदाहरण है। इसमे लेखक को पूर्ण सफलता नहीं मिली है। वह सौन्दर्य जो हमे हेमलेट, मेकवेथ, मे प्राप्त है वह इसमे नहीं मिलता। पर प्रेमचन्द ने इस नवीन धारा को दृढता पूर्वक प्रवाहित करने की इच्छा की थी, पर खेद है कि उनको इसको और पुष्ट करने का समय न मिल सका और न सफलता ही मिल सकी।

यद्यपि हम प्रेमचन्द को ... [illegible] ...कार तथा

पं० गोविन्द वल्लभ पंत :—

हिन्दी साहित्य में नाटकों के तृतीय उत्थान मे पं० गोविन्द वल्लभ पंत का स्थान एक विशेष विचारणीय है। पं० जी के नाटको की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है। वर-माला इनकी रचनाओ में एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर चुका है। इसका कथानक मारकंडे पुराण के एक आख्यान के आधार पर है। कथा इसकी बहुत ही छोटी सी है राजा करंधम जो तत्कालीन भूमंडल का राजा था, उसके पुत्र अवीक्षित ने विदिशा के राजा विशाल के पुत्री वैशालिनी से विवाह करने की इच्छा से उससे उस स्थान पर मिला जहाँ वह अपने भावी स्वयंवर के लिए वरमाला तैयार कर रही थी। अवीक्षित उससे वरमाला उसी को पहनाने की प्रार्थना करता है। इस पर वह कहती है "तुम तीनो लोक जीत सकते हो; किन्तु मेरे हृदय का शतांश भी नहीं जीत सकते" आगे चलकर स्वयंवर मे वह उसे आकर बाहुबल से उठा ले जाता है, एतदर्थ वैशालिनी के पिता द्वारा वह पराजित होता है और इसी समय से वह लज्जित होकर रहता है। करंधम विशाल को हरा देते है। इस प्रकार अवीक्षितका विवाह वैशालिनी से हो जाय इस प्रस्ताव पर संधि होती है। पर वह शादी नहीं करता चला जाता है। वैशालिनी भी उसके प्रेम में अन्त में जगल मे उसको खोजने जाती है और अपनी शुष्क वरमाला उसके गले मे डालती है।

भाषा के दृष्टि कोण से जब हम पंत जी को देखेंगे उस समय आपकी भाषा सर्व साधारण की बोल-चाल की ही भाषा हमे दिखेगी। कहीं कहीं पर अ[illegible]र पात्रों से

वरमाला के प्रथम अंक में प्रथम दृश्य में है वह केवल इसके कि वरमाला और अवीक्षित के कथोपकथन में एक द्वन्द्व युद्ध का दृश्य है—और कहा ही क्या जा सकता है।

वरमाला का लेकर भाग जाना ही नाटक के कथानक का प्रधान तत्व है, नाटक इसी घटना के हो जाने से बढ़ता है, पर आगे चल कर जब अवीक्षित उसका परित्याग कर देता है तो उसमें और उसके फिर इन शब्दों मे "हां, हां, निस्संदेह क्योंकि आज मैंने तुम्हें जीता है।" इसलिए तुमसे विवाह करूँगा कोई अधिक प्रभावयुक्त आभास नहीं मिलता और बाद में वह उसका परिणय कर लेता है। कितना अस्वाभाविक हो जाता है। जिस समय एक आर्यकुल का हितैषी एक बार यह प्रण करके "नहीं पिताजी धृष्टता क्षमा हो! . जो प्रतिज्ञा वैशालिनी के ग्रहण से आरम्भ हुई थी, वह आज मेरे आजन्म अविवाहित रहने पर समाप्त हुई।" अवीक्षित एक स्थान पर और यह कहता है कि "........ .मैं एक कायर हूँ, युद्ध मे पराजित आपका बन्दी हूँ (करंधम से)।" इन वचनो के उपरान्त एक दम से अवीक्षित का यह कहना "वैशालिनी! प्रिये! प्राणेश्वरी! आओ, आओ अब तुम्हे प्यार करूँगा।" पर अस्वाभाविक है। यदि इस स्थान पर यह कह दिया जाय कि नाटककार अपने यहां कम सफल हुआ तो बुरा न होगा।

अन्त में इतना अवश्य कह दूँगा कि पन्तजी के नाटकों में साधारण दृष्टिकोण से चरित्र चित्रण अच्छे हैं, और इस प्रकार की त्रुटियाँ और नाटको में बहुत कम है। इस नाटक के अतिरिक्त और नाटक भी आपके कला पूर्ण अभिनेय नाटक हैं। हमें पन्त जी से नाट्य साहित्य मे बड़ी आशायें हैं—आपके

पं० बद्री नाथ भट्ट :—

आप एक उच्चकोटि के नाटककार हैं। आपके उत्कृष्ट नाटकों में तुलसीदास, वेनचरित्र, दुर्गावती, चन्द्रगुप्त इत्यादि हैं। वास्तव में दुर्गावती आपका अपूर्व नाटक है, जिसका प्रमुख कारण भारतीय स्त्रीमुकुट दुर्गावती का चरित्र है।

चरित्र चित्रण आपका बड़ा स्वाभाविक होता है, दुर्गावती का चरित्र चित्रण एक उच्चकोटि का चरित्र है, जो स्वदेश हित के लिए बलिदान होने को तैयार है। देशद्रोही बदनसिंह का चरित्र उतना ही जघन्य बनाया गया है जितना दुर्गावती का उच्च कोटि का। क्योंकि वह देशद्रोही है। आपके चरित्र परम स्वाभाविक होते हैं।

प्रहसनों के लुप्त होने के इस समय में आपके हास्यात्मक प्रहसन अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। आपके प्रहसनो का आधुनिक समय में एक अच्छा स्थान है। आप कितने अधिक कुशल कलाकार हैं इसका अनुमान आपकी भाषा की सादगी तथा भाषा की अकृत्रिमता है। भाषा में आपने प्रहसनों तथा नाटकों दोनों में पूर्ण कुशलता प्राप्त की है। आपके नाटकों को तथा प्रहसनों को हम अभिनय के युक्त पाते हैं। आपकी विशेषता परम सुन्दर चरित्र चित्रण की शैली है।

पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र :—

आप आधुनिक समय के एक उत्कृष्ट नाटककार हैं। मेरे विचार में प्रसादजी के बाद आपका कुछ काल में स्थान आवेगा। मिश्र जी के नाटकों ने साहित्य मे अपना एक स्थान बना ~

एक विलक्षणता जो मिश्रजी के नाटकों में मिलती है वह यह है कि आपके नाटकों में संगीत का पूर्ण अभाव रहता है और इस कारण नाटकों को अभिनययुक्त बनाने में सफलता तथा असफलता दोनो की सम्भावनायें हैं। दृश्यों का, तथा अंकों का आपका क्रम स्वयं बनाया ज्ञात होता है, क्योंकि न तो आप भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार चलते हैं न प्राचीन अंग्रेज़ी ही। हाँ आधुनिक अंग्रेज़ी नाटकों का आप पर पूर्णप्रभाव है—यह मानना पड़ेगा।

इस प्रकार से इन्होंने साहित्य में एक नवीन धारा का ही सूत्रपात किया है। मिश्रजी के नाटकों मे पात्रों की संख्या बहुत ही चुनी हुई होती है। पात्रो का चरित्र चित्रण पूर्ण स्वाभाविक तथा सराहनीय है। सिन्दूर की होली में मनोरमा का चरित्र तथा भगवन्त सिंह का चरित्र पूर्ण स्वाभाविक है।

मनोजशंकर एक सराहनीय युवक है, वह कभी भी नहीं चाहता कि मुरालीलाल जो उसके संरक्षक हैं कभी भी अपने को नीचे गिरावें। जिस समय मनोज के पास ६००) मिलते हैं तब वह सोचता है कि क्या उन्होंने अपनी सारी तनख्वाह मेरे अध्ययन के व्यय के लिए भेज दिया—या यह कहीं दुर्व्यवहार से प्राप्त हुआ है। मनोज घर आता है और कहता है "आपको छ सौ रुपया वेतन मिलता है और छ. सौ आपने मुझे भेज दिया। घर का काम कैसे चलेगा" मुरारीलाल "इसकी तुम्हे क्यों चिन्ता हो"! मनोज "इस सन्देह मे कि इस प्रकार आपके नैतिक पतन की सम्भावना है।"

चन्द्रकला का चरित्र भी एक झलक देखने योग्य है यह जिस समय रजनीकान्त की आभा से प्रभावित हो जाती है,

लेकर कवि ने लिखा है। कवि ने इसमें प्रताप की प्रतिज्ञा के साथ साथ अपनी नाटक-रचना की प्रतिज्ञा का कार्य बड़े अच्छे ढंग से किया है। यह एक छोटा सा नाटक है, अभिनय के लिए यह परम उपयुक्त नाटक है।

मिलिन्दजी ने इसमें नाट्यशास्त्र के आज्ञानुसार युद्ध इत्यादि स्थलों को सूच्य बनाकर छोड़ दिया है। जिस समय प्रजा प्रतिनिधि चन्द्रावत जगमल को सिंहासन से हटाता है उस समय अस्वाभाविकता आ जाती है। क्योंकि राज्य छोड़ने का कार्य बड़ी सरलता पूर्वक ही समाप्त हो जाता है। मिलिन्दजी को प्रताप प्रतिज्ञा नाटक के दृष्टिकोण से यह उपालम्भ भी मिल सकता है कि उसमें नायिका के न होने से वह एक आख्यान के रूप में आता है नाटक के नहीं। हां उस आख्यान में नाटकीय कथोपकथन का समावेश पूर्ण रूप से है। आपके नाटक में इस दोष के आ जाने से नाटक उतना कला पूर्ण न हो सका है जितना कि होना चाहिए था।।

संस्कृत में भी वीररस प्रधान नाटक हैं पर उनमे यह दोष नहीं प्राप्त है। वेणीसंहारम् वीर रस का कितना सुन्दर नाट्य काव्य है।

आपकी भाषा प्रचलित बोल चाल की भाषा है। आपने उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया है पर भाषा आपकी कवित्व पूर्ण होने से परम आह्लादास्पद है। आपने अपनी भाषा के अन्तर्गत कवित्व को स्थान प्रदान किया है पर उसमे आपकी भाषा परम कृत्रिम नहीं हुई है।

चरित्र चित्रण भी आपका अच्छा हुआ है। आपके प्रताप प्रतिज्ञा में प्रतापसिंह का चरित्र परम सरल एकाङ्गी चित्र है। आपके

प्राचीन परिपाटी का बिलकुल पालन एक तरह से नहीं किया है। इससे आपकी यह रचना और भी नूतन हो गई है।

गुप्त जी की भाषा जो नाटकों में प्रयुक्त है उसमें हम खड़ी बोली का पूर्ण प्रयोग पाते हैं, और साथ साथ उर्दू मिश्रित भाषा न होने से आपकी भाषा बड़ी ही सरल तथा बोधगम्य होती हुई भी चलती है। उसमें अवरोध का कहीं नाम भी नहीं है।

चरित्र चित्रण को देखकर हमें यह ध्यान आता है कि आप मानव जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों को कितना समझते हैं यह सराहनीय है। आपके पात्र सदैव दिन में काम करने वाले किसान, तथा उन पर शासन करने वालों के अतिरिक्त प्रतिदिन के संघर्ष में आने वाले व्यक्ति रहते हैं। चरित्र चित्रण आपका परम स्वाभाविक तथा उपदेशात्मक होता है। आपके पात्र समाज के दर्पणों के रूप में भी उपस्थित होते हैं।

गुप्त जी एक कवि हैं और इसका परिणाम आपके नाटकों पर पूर्णरूपेण प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। भावुकता का समावेश आपके नाटको मे अवश्य मिलेगा। इस प्रकार से गुप्त जी अपने दो तीन नाटकों में कथानक, कथोपकथन, भाषा, शैली, चरित्र चित्रण में सफल हुए हैं—आपके नाटकों का यदि अभिनय किया जाय तो उसमे उतना आनन्द न आवेगा। जितना कि राधेश्याम कथा वाचक के नाटको मे आवेगा। परन्तु गुप्त जी अपने छोटे से पद्यात्मक नाट्यक्षेत्र मे अपना एक स्थान रखते हैं इनको न तो हम भारतेन्दु के समक्ष रख सकते हैं और न शेक्सपियर क्योंकि आपने अभी साहित्य के इस अंग मे उतनी उत्कंठा नहीं दिखलाई जितना की आपको चाहिए थी। आप एक सफल हिन्दी के पद्यात्मक नाटककार है यह सबको मानना पड़ेगा।